देवराज अब इसका अभिनय तुम देवताओं से कराइये । अर्थात् जो देवगण अभिनय की कला में निपुण हों, उनसे इसका अभिनय करने के लिये कहो। परन्तु देवराज इन्द्र ने देवताओं के अभिनय की कला में असमर्थ बताया। तो फिर ब्रह्मा जी ने इस 'नाट्यवेद' का अभिनय कराने के लिये भरतमुनि से कहा । भरतमुनि ने ब्रह्मा जी की आज्ञा को प्राप्त कर, अपने पुत्रों को 'नाट्यवेद के अभिनय की शिक्षा दी और इन्द्र के विजयोत्सव (ध्वजोत्सव) पर सर्वप्रथम 'नाट्यवेद' का अभिनय कराया । इस ध्वजोत्सव में देवराज इन्द्र की विजय और राक्षसों की पराजय का अभिनय कराया गया । जिसके कारण राक्षसों ने असन्तुष्ट होकर अभिनय में विघ्न उपस्थित कर दिया । दैत्यों के इस विघ्न से व्यथित होकर इन्द्र ने विश्वकर्मा को नाट्यगृह बनाने की आज्ञा दी । विश्वकर्मा ने देवराज इन्द्र की आज्ञानुसार नाट्यगृह की रचना की। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी ने दैत्यों को समझाया कि इस नाट्यवेद में धर्म, क्रीड़ा, शृङ्गार, हास्य, वीर आदि सभी विषयों का चित्रण किया गया है। यह नाट्यवेद केवल देवगणों के लिये नहीं है अपितु देव तथा दैत्य दोनों के लिये बनाया गया है।

शृङ्गारहास्यकरुण रौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्य रसा स्मृताः ॥

दैत्यों का असन्तोष दूर करते हुये ब्रह्मा जी ने दैत्यों से नाट्यवेद का प्रयोजन स्पष्ट करते हुये कहा है कि—

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ॥

अर्थात् यह नाटक दुःखी व्यथित, श्रान्त, शोकसन्तप्तजनों के लिये उचित समय पर शान्ति को उत्पन्न करने वाला अथवा शान्ति देने वाला है इसके अतिरिक्त यह नाट्यवेद धर्म, यश और आयु को बढ़ाने वाला एवं कल्याण और बुद्धि को देने वाला तथा कल्याणकारी उपदेशों को देने वाला होगा इसी भाव को निम्न श्लोक के द्वारा प्रकट किया गया है—

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि-विवर्द्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥

ब्रह्मा जी की आज्ञा से भरतमुनि अपने पुत्रों एवं शिष्यों को अभिनय की

B9

शिक्षा देकर ब्रह्मा जी के पास उपस्थित होते हैं। तथा इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा ने नाटचशाला का निर्माण किया। तब भरतमुनि ने अपने शिष्यों के द्वारा "अमृत-मन्थन" नामक एवं "समवकार" और "त्रिपुरदाह" एवं "डिम" नामक नाटकों का अभिनय कराया। इन नाटकों को देखकर देवता एवं दैत्य दोनों ही अति प्रसन्न हुये तथा हर्षोन्मत होकर उन्होंने ब्रह्मा जी से कहा कि— हे महामते ! आपके द्वारा निर्मित यह नाटचवेद अत्यन्त मनोरञ्जक एवं सुन्दर है। यह यश कल्याण, पुण्य और बुद्धि को वढ़ाने वाला है जैसा कि निम्न श्लोक से प्रकट होता है—

अहो नाटचमिदं सम्यक् त्वया सृष्टं महामते।
यशस्यं च शुभार्थं च पुण्यं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥

इस प्रकार यह नाटचवेद भरतमुनि के नाटचशास्त्र के अनुसार पञ्चम वेद है। यद्यपि नाटचकला का आविर्भाव ब्रह्मा जीं के द्वारा हुआ और उसका अभिनय भरतमुनि ने अपने शिष्यों द्वारा कराया। परन्तु इससे भी पूर्व विरचित चारों वेदों में नाटक के प्रमुख अङ्गों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अतः वेद ही नाटकों की उत्पत्ति के स्थल हैं। नाटक के मुख्य अङ्ग, (१) संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय के बीज किसी न किसी रूप में वेदों में प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये ऋग्वेद में यमयमी-सम्वाद, पुरुरवा-उर्वशी सम्वाद, सरमा-पणि सम्वाद, नचिकेता-यम सम्वाद आदि सम्वाद नाटकों के कथोपकथन के बीज हैं। इसीलिये कहा है कि—"जग्राह पाठ्यऋग्वेदाद्"। नाटकों में संगीत सामवेद से लिया गया हूँ। इसी आशय को व्यक्त करने के लिये कहा गया है कि—"सामभ्यो गीतमेव च"। यजुर्वेद के वैदिक क्रिया-कलापों में अभिनय के बीज दिखाई देते हैं। इसीलिये कहा है कि—"यजुर्वेदादभिनयान्"। इसी प्रकार शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर आदि रसों के बीज अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं। इसीलिये भरतमुनि ने "रसानाथर्वणादपि" लिखा है। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नाटक के सभी बीज वेदों में विद्यमान हैं उन्हीं से इस पञ्चम वेद अर्थात् नाटक का आविर्भाव हुआ है।

पौराणिक काल—वैदिक काल के उपरान्त लौकिक-साहित्य के रचना का समय आता है और उसमें भी रामायण और महाभारत में नाटच-वेद का

विकास हुआ। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रामायण में नट, नाटक, नर्तक रंग अर्थात् रंगमंच, कुशीलव आदि शब्दों का प्रयोग होता है। ये पारिभाषिक शब्द नाटक के विकास के प्रमाण हैं। महाभारत में भी अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्राचीनकाल में विशेष पर्वों पर राम तथा कृष्ण-लीला का अभिनय किया जाता रहा है। भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में अमृत-मन्थन, त्रिपुरदाह और प्रलम्ब-वध आदि नाटकों का नाम लिया है। बौद्धों ने भी बौद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिये नाटकों का आश्रय लिया था।

पाणिनि-काल—व्याकरण-शास्त्र के प्रमुख विद्वान् पाणिनि ने अपने व्याकरण के ग्रन्थ-रत्न में शिलालि और कृशाश्व नामक दो नटों का नाम सूत्रों के द्वारा उद्धृत किया है। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि के समय तक नाटकों का विकास हो चुका था, परन्तु वे कृतियाँ काल के गाल में विलुप्त हो गई जिसके कारण तत्कालीन नाटक आज उपलब्ध नहीं होते हैं सम्भवतः पाणिनि काल में नाटक विकसित हो रहे होंगे। महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि ने १५० ई० पू० कंस-वध और वालि-वध नामक दो नाटकों के नाम का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता हैं कि २०० ई० पू० संस्कृत नाटक रगमंच पर खेले जाने लगे थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नागपुर की पहाड़ियों में प्राप्त रंग-शाला हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत नाटकों का आविर्भाव वेदों से ही हुआ है तथा पाणिनि और पतञ्जलि के समय तक आकर नाटकों का विकास होने लगा था क्योंकि नाट्यशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ भरतमुनि का प्राप्त होता है। अतः भरतमुनि को प्रथम नाट्य-वेद और नाट्यशास्त्र का प्रणेता माना जाता है।

संस्कृत के प्रथम नाटककार भास—

यद्यपि यह निश्चित है कि संस्कृत के नाटकों की उत्पत्ति वेदों से ही हुई है। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से नाटक के बीजों के दर्शन होते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय तक संस्कृत नाटकों ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी कालिदास के नाटकों की उत्कृष्ट एवं परिमार्जित शैली को देखकर यह आभास होने लगता है कि कालिदास से पूर्व संस्कृत नाटकों की चरमोन्नति हो चुकी थी उसी का परिणाम है कि कालिदास ने इस उत्कृष्ट नाट्यशास्त्र की रचना

करके कवि-सम्राट की पदवी प्राप्त की। किन्तु खेद है कि काल की विषम गति के अनुसार कालिदास से पूर्व के नाटक आज भास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि के प्राप्त नहीं हो रहे हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि कालिदास के उत्कृष्ट नाटकों के समक्ष भास के अतिरिक्त अन्य साधारण नाटक असाधारण नाटकों के आते ही समाप्त हो गये हों, स्वयं कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में सूत्रधार के मुख से एक प्रश्न करवाया है—लब्ध प्रतिष्ठित नाटककार भास, रोमिल्ल-सौमिल्ल, कवि पुत्र आदि की रचनाओं को छोड़कर कालिदास की रचनाओं का इतना अधिक आदर क्यों किया जा रहा है? जैसा कि स्वयं कालिदास ने निम्न श्लोक में लिखा है कि—

"प्रथित-यशसां भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीना प्रवन्धानति-
क्रम्यं कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ वहुमानः ॥"

इन पंक्तियों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कालिदास के समय तक भास के नाटकों की प्रर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी तथा अन्य कवियों ने भी नाट्य-साहित्य का सृजन किया था। सप्तम शताब्दी के गद्य-कवि वाणभट्ट ने भी भास की प्रसिद्धि का उल्लेख हर्षचरित में निम्न प्रकार किया है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्वहु भूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

इससे भास की उत्कृष्ट नाट्य-कला का परिचय स्वयं प्राप्त हो रहा है। भास एक उत्कृष्ट नाटककार थे, दशम शताब्दी में राजशेखर ने भास के प्रसिद्ध नाटक स्वप्नवासवदत्तम् के विषय में प्रशंसा करते हुए लिखा है—

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्तं परीक्षितु ं।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभूत्त पावक ॥

टी० गणपति शास्त्री ने महाकवि भास के तेरह नांटकों का वड़े परिश्रम से १९१० ई० में त्रावणकोर से अन्वेषण करके निकाला। डॉ० कीथ ने कहा है कि गणपति शास्त्री ने जिस परिश्रम एवं तर्क से यह सिद्ध किया है कि—प्राप्त १३ नाटक भास की कृति हैं। मैं उनके तर्कों से सन्तुष्ट हूँ ये १३ नाटक एक ही व्यक्ति की रचना हैं।

Preface to second Ed. Classical Sanskrit Lit. By Dr. A.B. Keith, "That all the almost all the Trivandram plays

are by the same author, and this author ranks higher than any Sanskrit dramatist other Kalidas."

टी० गणपति शास्त्री के मतानुसार भास का समय ४०० ई० पू० बाद नहीं माना जा सकता है भास ने अपने नाटकों में सरल एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग करके संस्कृत नाट्य-साहित्य में प्रेरणा-स्रोत प्रवाहित किया है। भास की रचना में कुछ अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। अतः भास पाणिनी के समकालीन हो सकते हैं। इसीलिये उनकी रचना में आर्ष प्रयोग प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त भास ने अपने प्रतिमानाटक में बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। चाणक्यकृत अर्थशास्त्र का नहीं किया अपितु चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् के श्लोक को अपने अर्थशास्त्र में उद्धृत किया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि भास चाणक्य से पूर्ववर्ती थे। भास के नाटकों में चित्रित सामाजिक स्थिति से भी यही प्रतीत होता है कि भास के नाटकों की रचना ४०० ई० पू० होनी चाहिये। डॉ० कीथ आदि कतिपय विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भास के नाटकों को सन्दिग्ध दृष्टि से देखने वाले विद्वानों के तर्क युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होते हैं। अतः भास का समय अन्तःसाक्ष्य एवं वहिरंग प्रमाणों से ४०० ई० पू० अथवा ५०० ई० पू० निश्चित होता है।

पण्डित बलदेव उपाध्याय जी ने भास की नाट्य-कला की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—

"भास को मानव जीवन के नाना क्षेत्रों को देखने तथा नाटकों में अंकित करने का अवसर मिला है। इसलिये उनके नाटकों में से विविधता तथा बहु-रूपता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। कुछ नाटक जैसे स्वप्नवासवदत्त, प्रतिमानाटक आदि पूर्ण विकसित नाटक हैं परन्तु मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार तथा उरुभंग केवल एक-एक अंक के रूपक होने के कारण एकांकी कहे जा सकते हैं। इन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है—अभिनेयता। ये सभी नाटक रंगमंच पर बड़ी सफलता के साथ खेले जा सकते हैं। संस्कृत में सबसे पूर्व एकांकी लिखने का श्रेय भास को ही है। यद्यपि भास भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट नाट्य-नियमों का अक्षरशः पालन नहीं कर सके हैं फिर भी अपनी अद्वितीय कल्पना शक्ति से उन्होंने अपने कथानक को अत्यन्त रोचक बना दिया है। उनकी अनुपम शैली यह है कि कहीं-कहीं परोक्ष घटनाओं एवं

पात्रों को रंगमंच पर विना उपस्थित किये ही दर्शकों में पूर्ण रुचि अपने रचना कौशल से उत्पन्न कर देते हैं। भास की लोकप्रियता का आधार उनका चारुदत्त है। जिसका आश्रय करके शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की। उसके स्वप्नवासवदत्ता के कथानक का तो वहुत से परवर्ती नाटककारों ने उपयोग किया है।" भास के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता घटनाओं की प्रधानता का चित्रण एवं सहसा प्रस्तुत होने वाली घटनाओं की शृंखला है। भास ने पौराणिक कला का तथा पौराणिक पात्रों का चित्रण वड़ी मार्मिकता एवं वड़ी वैज्ञानिकता के साथ किया है। नाटकों में यत्र-तत्र शिष्ट एवं परिमार्जित हास्य रस का मनोरंजक योग प्राप्त होता है। भास की रचनाओं में दीर्घकाय समास एवं विकट-वन्ध रचनाओं का अभाव है और साथ ही स्वभावतः आये हुये उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सरल अलंकारों के दर्शन होते हैं। रस परिपाक की दृष्टि से भास के नाटक पूर्णतः सफल नाटक हैं। उनके नाटकों में मार्मिक लोकोक्तियों का भी यथास्थान साक्षात्कार होता है। यथा 'वाचानुवृत्तिः खलु अतिथि सत्कारः", सर्वमलङ्कारो सुरूपाणाम्।" महाकवि भास ने प्रकृति के अन्तः स्वरूप एवं वाह्य-स्वरूप का भी चित्रण करते हुये अपने अप्रितम काव्य-नैपुण्य का परिचय दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भास ही आद्य संस्कृत नाटककार हैं तथा उनका नाट्य साहित्य में एक श्रेष्ठ स्थान है। काव्यमीमांसाकार राजशेखर में उनकी प्रशंसा में निम्न श्लोक लिखा है—

भासोरामल्लिसौमिलौवररुचिः श्री साहसाङ्ककवि,
मेंण्ठो-भारवि-कालिदासतरलाः स्कन्धः सुवन्धुश्च यः।
दण्डीवाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः,
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ॥

चन्द्रालोककार जयदेव ने अपने प्रसिद्ध नाटक "प्रसन्नते राघव" की भूमिका में भास की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि—

यस्याश्चो रश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरोमयूरः,
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चवाणस्तु वाणः;
केषां नैषां कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

सर्वश्रेष्ठ नाटककार कविकुलगुरु कालिदास—

भास के उपरान्त कविकुलगुरु कालिदास का नाम सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में आदर से लिया जाता है। कालिदास की नाटच-कला से प्रभावित होकर विद्वान आलोचकों ने कहा है कि—"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला:" इससे स्पष्ट है कि कालिदास का संस्कृत नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है और उसके रचयिता कालिदास भारतीय साहित्य के ही नहीं अपितु विश्व साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटककार एवं कलाकार हैं। कालिदास ने तीन नाटकों की रचना की है। उनके नाम (१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (२) विक्रमोर्वशीयम् और (३) मालविकाग्निमित्रम् हैं। इनमें भी शाकुन्तल की रमणीणता से कालिदास का नाम नाटककारों में मुकुटमणि के समान श्रेष्ठ माना जाता है। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान डा० गेटे ने कालिदास के शाकुन्तल की प्रचुर प्रशंसा की है। गेटे की प्रशस्ति का भाव अग्रलिखित है—

"यौवन रूप वासन्तिक कुसुम सौरभ और प्रौढ़त्वरूप ग्रीष्म-ऋतु के मधुर फलों को, अथवा अमृततुल्य मानस को, सन्तप्त और विमुग्ध करने वाली किसी अन्य वस्तु को यदि देखने चाहते हो अथवा पार्थिव ऐश्वर्य एवं स्वर्गीय सुषमा का अपूर्व सम्मिलन यदि एक स्थान पर देखने चाहते हो तो हे प्रिय मित्र ! अभिज्ञानशाकुन्तल का अवलोकन कीजिये।

अमेथरिका के प्रसिद्ध विद्वान राइडर ने कालिदास की प्रशस्ति में लिखा है कि—

"Kalidas is the great poet in the firmament of Indian poetry"

महाकवि कालिदास की काव्य-कला एवं नाटच-कला ने परवर्ती काव्य तथा नाटच-कला के लिये प्रचुर प्रेरणा स्रोत प्रदान किया है। कवि कुलगुरु कालिदास ने चारों वेदों, आरण्यकों, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों से तथा महाभारत, रामायण, भास एवं सौमिल्ल आदि से प्रेरणा प्राप्त करके अपनी अनुपम प्रतिभा से विश्व के लिये अनुपम साहित्य का सृजन किया है मेघदूत के प्रकृति-चित्रणों पर वाल्मीकीय रामायण में वर्णित प्रकृति-चित्रणों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रघुवंश पर तो रामायण का व्यापक प्रभाव प्रतीत हो ही

रहा हो । शाकुन्तल की कथा महाभारत से ग्रहण की गई है और शाकुन्तल व मालविकाग्निमित्रम् पर भाव की कला का प्रभाव स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहा है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि कालिदास अप्रितम प्रातिभ्य के कारण ही विश्व के बेजोड़ कवि हैं और शाकुन्तल बेजोड़ अतुलनीय सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। कालिदास संस्कृत साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान् एवं अमर कवि हैं। वे आज भी यशःशरीर से जीवित हैं, जैसा कि कालिदास जैसे कवियों के लिये कहा गया है कि—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणज भयम् ॥

बौद्ध नाटककार अश्वघोष—महाकवि अश्वघोष सम्राट् कनिष्क की राजसभा में दरवारी कवि के रूप में रहते थे। इनके दो महाकाव्यों एवं तीन रूपकों का परिचय प्राप्त होता है। १९१० ई० में लुडर्स नामक विदेशी विद्वान् ने मध्य एशिया में प्राचीन हस्तलिखित लेखों का अन्वेषण करते हुये उनको अश्वघोषकृत घोषित किया। उनके नाम (१) शारिपुत्र प्रकरण, (२) प्रबोध-चन्द्रोदय तथा (३) वैश्यानायिकात्मक हैं। जिनमें शारिपुत्र-प्रकरण के अतिरिक्त अन्य दो रूपक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में प्राप्त हुये हैं।

शारिपुत्र प्रकरण—यह प्रकरण ६ अङ्कों का है। इसमें भगवान् गौतम बुद्ध के द्वारा शारिपुत्र और मौद्गलायन नामक दो व्यक्तियों के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की मनोरंजक कथा का चित्रण किया है। शारिपुत्र प्रकरण के अतिरिक्त प्राप्त हुए अन्य दो रूपकों को डा० लुडर्स ने रचना के आधार पर अश्वघोष की कृति माना है। इनमें से एक की कथावस्तु अति सुन्दर है। दूसरा नाटक मृच्छकटिक के समान वेश्या को नायिका बनाकर निर्मित किया गया है।

मृच्छकटिक और महाकवि शूद्रक—शूद्रक की अमर कृति मृच्छकटिक संस्कृत नाटयसाहित्य की अनुपम निधि है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना में राजा शूद्रक को इसका रचयिता बताया गया है। शूद्रक जाति से क्षत्रिय थे। ये विविध शास्त्रों, चारों वेद, गणित, वैशिकी कला और हस्तिशिक्षा-शास्त्र आदि में परम निष्णात थे। सुदृढ़ एवं बलिष्ठ शरीर वाले थे। उन्हें पहलवानों एवं हाथियों से मल्लयुद्ध करने में विशेष आनन्द की प्राप्ति होती थी।

शूद्रक ने अश्वमेध यज्ञ करके, पुत्र को राज्य-भार समर्पित कर सौ वर्ष और दस दिन की आयु प्राप्त कर, अग्नि में प्रवेश करके अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया था।

यद्यपि शूद्रक के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद प्राप्त होता है। कुछ विद्वान् शूद्रक को कल्पित पुरुष मानते हैं और कुछ विद्वान् शूद्रक को ऐतिहासिक राजा एवं महाकवि मानते हैं। डा० कीथ शूद्रक को मृच्छकटिक का रचयिता स्वीकार नहीं करते हैं और वे शूद्रक को एक कल्पित पुरुष मानते हैं। डा० लेवी भी इसी विचारधारा के व्यक्ति हैं। डा० पिशेल शूद्रक को मृच्छकटिक का रचयिता स्वीकार करते हैं। डा० देवस्थली ने परम्परा के आधार पर शुद्रक को मृच्छकटिक का निर्माता स्वीकार किया है। परन्तु शूद्रक का अन्य राजाओं से सम्वन्ध सिद्ध नहीं होता है। अतः शूद्रक को ऐतिहासिक मानने में संकोच किया जाता है। तथापि शूद्रक का नाम संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों में (दशकुमारचरित, कादम्वरी, हर्षचरित, राजतरंगिणी, वेतालपंचविंशति, विक्रान्त-शूद्रक, शूद्रक वध, शूद्रक-चरित और अवन्ति-सुन्दरी-कथा-सार आदि में) उसके चरित का वर्णन मिलता है। परन्तु कालगति के विषम होने के कारण इस युग में शूद्रक का नाम काल्पनिक प्रतीत होने लगा है। किन्तु खेद है कि ऐतिहासिक दृष्टि के शूद्रक का सम्वन्ध किसी प्राचीन राजा से ज्ञात नहीं होता है।

मृच्छकटिक का नामकरण—प्राचीन भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार शूद्रक ने अपने नाटक का नाम नायक या नायिका के नाम पर नहीं रखा, क्योंकि भास अपने नाटक का नाम चारुदत्त रख चुके थे। अतः शूद्रक ने बड़ी सूक्ष्म वुद्धि से निर्णय करके एक मार्मिक नाम खोजकर मृच्छकटिक (मट्टी की गाड़ी) रखा है। मृच्छकटिक एक 'प्रकरण' है। इसके ३ वें अङ्क में चारुदत्त का पुत्र रोहसेन पड़ौसी के वालक के पास सोने की गाड़ी देखकर गाड़ी लेने की हठ करता है। रदनिका रोहसेन को वहलाने के लिये मिट्टी की गाड़ी देती है। वसन्तसेना यह देखकर अपने आभूषण उतार कर मिट्टी की गाड़ी में भर देती है। इस प्रकार इस मिट्टी की गाड़ी का चित्रण होने से इसी के आधार पर इसका नाम मृच्छकटिक रखा है। पं० चन्द्रवली पाण्डेय ने इस विषय में कहा है कि—

यह नाटक सोने पर नहीं शील पर चलता है। कवि ने सुवर्ण को समझा और मृत्तिका को परखा तो, बरबस नाम चला मृच्छकटिक। सब कुछ भाग्य का खेल है। जीवन वास्तव में मिट्टी की गाड़ी में ही चलता है। उसका और कोई वाहन नहीं। आदमी सोने की गाड़ी के लिये मचलता है, परन्तु खेल खिलाती है मिट्टी की गाड़ी ही। इस नाटक में सारी कहानी गाड़ियों की ही है। आर्यक भी गाड़ी से बचकर ही राजा बनता है। मानो लेखक कहता है कि जीवन में कोई गाड़ी ठीक जगह पहुँचती है तो कोई गलत जगह। यह भाग्य का खेल ही प्रधान है। मिट्टी की गाड़ी ही आदमी को जीवन में खेल खिलाती है। यही प्रधान है, अतः प्रकरण का नाम मृच्छकटिक सार्थक है।

वस्तुतः मनुष्य की जीवन रूपी गाड़ी भाग्य के संकेतों पर ही चलती है। रोहसेन सोने की गाड़ी प्राप्त करना चाहता है और वसन्तसेना भी चारुदत्त के पास गाड़ी में जाने के लिये तैयार होती है। परन्तु भाग्य से वह शकार की गाड़ी में बैठ जाती है। इस प्रकार वसन्तसेना की गाड़ी बदलने की घटना रोहसेन की सोने की गाड़ी पाने वाली इच्छा से जुड़ जाती है। मिट्टी की गाड़ी रोहसेन को पसन्द न आने के कारण ही वसन्तसेना आभूषण उतार कर गाड़ी में भर देती है, ताकि उसे गाड़ी पसन्द आ जाये। यह मिट्टी की गाड़ी पसन्द न आना ही चारुदत्त पर अनेक विपत्तियों का पहाड़ टूटना है। क्योंकि नायक चारुदत्त का संघर्षमय जीवन और निरन्तर विपत्तियों का आना, रोहसेन के द्वारा मिट्टी की गाड़ी को स्वीकार न करने पर बसन्तसेना के द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मिट्टी की गाड़ी को आधार मानकर इस प्रकरण का नाम मृच्छकटिक रखा है, जो सर्वथा मार्मिक और अन्वर्थक प्रतीत होता है। मृच्छकटिक की भाषा सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है। नाटककार ने पात्रों के अनुसार प्राकृतों का प्रयोग करके विशिष्टता का परिचय दिया है। यत्र-तत्र लोकोक्तियों, सूक्तियों और अनुभूतिमय वाक्यों का प्रयोग करके रचना में सजीवता उत्पन्न कर दी है।

विशाखदत्त और मुद्राराक्षस—संस्कृत नाट्य-साहित्य में क्रमशः चार नाटककारों का नाम आदर के साथ स्मरण किया जाता है। उनके नाम

क्रमशः (१) भास, (२) कालिदास, (३) शूद्रक, (४) विशाखदत्त हैं। पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय जी ने विशाखदत्त का समय पंचम शताब्दी के मध्य भाग में माना है। आपने विशाखदत्त को भवभूति से पूर्ववर्ती मानते हुये मुद्राराक्षस की रचना शैली और तत्कालीन स्थिति के अनुसार विशाखदत्त का समय चौथी अथवा पंचमी शताब्दी माना है।

मुद्राराक्षस की रचना शैली सजीव और यथार्थ प्रतीत होती है। यह घटना-प्रधान नाटक है। इसमें कूटनीति और राजनीति के विविध दाव-पेंचों का सफल चित्रण किया गया है। भाषा में ओज गुण की दीप्ति से वीर-रस का उचित परिमाप हुआ है। मुद्राराक्षस में चाणक्य के व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र देखा जा सकता है। उसके होते हुये चन्द्रगुप्त के तिरस्कार की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है।

बलदेव प्रसाद उपाध्याय जी ने मुद्राराक्षस की समीक्षा करते हुये कहा है कि—

"भाषा तथा भाव, शैली तथा कृतित्व, वस्तु, पात्र-चित्रण के समीक्षण के बल पर कह सकते हैं कि विशाखदत्त का यह नाटक वास्तव में एक अद्भुत सफल कृति है। जिसमें कालिदास के समान कोमल भावों की सरलता नहीं है। न भवभूति के समान हृदय को रुलाने वाली करुणा का प्रसार है, न भट्टनारायण के समान योद्धाओं को समरांगण में प्राण देने के लिये न्यौता देने वाले नगाड़े की गड़गड़ाहट है। परन्तु इसमें दो विशाल राजनीतिज्ञों के बुद्धि-वैभव के नाना खेलों का विपुल आगार और मानवता की भव्य मूर्ति को उपस्थित करने वाली नाट्य-कला का सुन्दर ओजस्वी रूप है। निःसन्देह मुद्राराक्षस संस्कृत का सफल नाटक होने के अतिरिक्त विश्व-साहित्य में अपना उचित स्थान बनाये रखने की योग्यता रखता है।"

महाकवि भवभूति—विशाखदत्त के पश्चात् संस्कृत नाट्य-साहित्य में भवभूति का प्रमुख अस्तित्व एवं महत्व है। कालिदास सदृश रससिद्ध कवियों की तुलना में भवभूति ही आते हैं। महावीरचरित के अनुसार भवभूति के पूर्वज पद्मपुर के निवासी थे। उनके बाबा का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी एवं भवभूति का अपना नाम

श्रीकण्ठ था। ये व्याकरण, न्याय, मीमांस, वेदान्त आदि में पारंगत प्रकाण्ड विद्वान् थे। भवभूति का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। भवभूति बाणभट्ट के परवर्ती थे। उनकी तीन रचनायें प्राप्त होती हैं। जिनके नाम (१) महावीरचरित, (२) मालती-माधव और (३) उत्तररामचरित हैं। महावीरचरित और उत्तररामचरित की कथा का आधार रामायण है। मालतीमाधव में कामन्दकी नाम बौद्ध संन्यासनी को पात्र बनाकर मालती और माधव के प्रणय का चित्रण किया है। कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी, अघोरघण्ट कपालकुण्डला के जाल में फंसकर बौद्ध-धर्म को भूल जाती है। इस प्रकार मालतीमाधव में भवभूति का मुख्य उद्देश्य बौद्ध-धर्म के पतित चित्र को प्रस्तुत करना ही प्रतीत होता है।

भवभूति रससिद्ध कलाकार थे। उन्होंने वीर एवं करुण रस का बड़ा मार्मिक एवं सफल चित्रण किया है। महावीरचरित की रचना वीर रस प्रधान और मालतीमाधव श्रृङ्गार रस प्रधान तथा उत्तररामचरित करुण-रस प्रधान है। भवभूति ने अन्य रसों की अपेक्षा करुण रस को विशेष गौरवता प्रदान करते हुये कहा है कि—

एको रसः करुण एव निमित्त-भेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त्तबुदबुदतरंगमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥

महाकवि भवभूति ने अपनी इस मान्यता का सफल चित्रण उत्तर राम-चरित में बड़ी सशक्तता एवं सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है।

श्री हर्ष (सम्राट हर्षवर्धन)—नाटककार हर्षवर्धन का नाम नाट्य-साहित्य में भवभूति के पश्चात् सप्तमी शताब्दी में आता है। श्रीहर्ष ही सम्राट हर्ष-वर्धन थे। यद्यपि डा० कीथ के अनुसार श्रीहर्षकृत तीनों नाटकों में चिन्तित घटनायें हर्षवर्धन के राज्यकाल में घटित नहीं हुई है। अतः सम्राट हर्षवर्धन इन नाटकों के निर्माता नहीं हो सकते। कीथ ने श्रीहर्ष के नाम से प्राप्त नाटकों वाणकृत मानते का विचार व्यक्त किया है। परन्तु विद्वानों को डा० कीथ का यह मत मान्य नहीं है।

श्रीहर्षकृत ग्रन्थों की संख्या चार है, जिनमें तीन नाटक (१) प्रियदर्शिका, (२) रत्नावली और (३) नागानन्द हैं और एक व्याकरण से सम्बन्धित "वाक्यपदीय" नामक व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थरत्न है।

भास, कालिदास और शूद्रक ने तो संस्कृत नाट्य-साहित्य का विकास किया है। भरत के नाट्यशास्त्र से सिद्धान्तों पर अक्षरशः चलने का प्रयास नहीं किया। श्रीहर्ष के समय तक संस्कृत पाटकों में भरत के नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन किया जाने लगा था। यही कारण है कि श्रीहर्ष की "रत्नावली" की रचना में नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का यथावत् निर्वाह किया गया है। डा० भोलाशंकर व्यास ने कहा है कि, "निःसन्देह रत्नावली का गंविधान न केवल मञ्चीय गत्यात्मकता दृष्टि से ही, अपितु शास्त्रीय सैद्धान्तिक दृष्टि से किया जान पड़ता है।.........वह (रत्नावली) अकेली श्रीहर्ष की नाट्यकला को प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।" संस्कृत नाट्य-साहित्य में श्रीहर्ष ने एक नवीन नाट्य रचना का प्रणयन किया है, वह है नाट्य परम्परा। श्रीहर्ष के परवर्ती नाटककारों ने नाटिकाओं की प्रणयन "रत्नावली" को आधार सा मानकर किया है। उन नाटककारों की कृतियों के नाम विद्धशालाभञ्जिका, कर्पूरमञ्जरी, कर्ण-सुन्दरी, वृषभानुजा आदि नाटिकायें हैं। केवल "रत्नावली" इसलिये प्रशंसनीय है कि वह नाटिका है। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष की रत्नावली नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं गुणों से युक्त होने के कारण संस्कृत नाट्य-साहित्य की अमर एवं अनुपम कृति है।

भट्टनारायण—भट्टनारायण बंगाल के राजा "आदिशूर" की सभा में राजकवि के रूप में रहते थे। यद्यपि आपका जन्म कन्नौज में हुआ था, परन्तु विद्याध्ययन के पश्चात् बंगाल में चले गये। आदिशूर का समय ६५० ई० के लगभग माना जाता है। भट्टनारायण का समय भी सप्तमी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानना चाहिये। भट्टनारायण के द्वारा रचित तीन रचनायें थीं। परन्तु खेद है कि उनमें से आज एक रचना "वेणीसंहार" ही प्राप्त है। यह नाटक है, इस नाटक में महाकवि के द्वारा महाभारत की घटना को लेकर पर्याप्त प्रतिभा के द्वारा परिवर्तन करके चित्रित किया गया है। युधिष्ठिर आदि पाण्डव द्यूत-क्रीड़ा में दुर्योधन से पराजित एवं अपमानित होकर तेरह

वर्ष तक वन में वास करते हैं। दुर्योधन की सभा में द्रौपदी की लाज हरण करने का दुःसाहस दुशासन ने किया था। भीम ने वहीं दुर्योधन का उरुभंग और दुःशासन के हृदय का रक्तपान करने और दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी के बालों को सवारने की प्रतिज्ञा की थी। इस प्रतिज्ञा के आधार पर ही भट्ट जी ने अपने नाटक का नाम 'वेणीसंहार' रखा है। इसी करुणा एवं हृदयद्रावक घटना का पर्याप्त परिवर्तन एवं नवीनता के साथ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। भट्ट जी का यह नाटक अभिनेयता की अपेक्षा कवित्व प्रधान है, भाषा में दीर्घकाय समासों की बहुलता प्राप्त होती है। अतः यह नाटकीयता की अपेक्षा कवित्व के अधिक समीप है।

मुरारि—यद्यपि मुरारि के समय के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, तथापि मुरारि ने भवभूति के उत्तररामचरित के दो श्लोकों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुरारि भवभूति के पश्चात् हुए हैं। रत्नाकार ने अपनी रचना "हरविजय" में मुरारि के नाम का उल्लेख किया है तथा रत्नाकार का समय ७०० ई० माना जाता है। अतः इन दो प्रमाणों एवं तर्कों के अनुसार मुरारि का समय भवभूति एवं रत्नाकार के मध्य में ही माना जाना चाहिये। मुरारि द्वारा रचित नाटक "अनर्घराघव" है। इसकी कथावस्तु का आधार रामायण है। अपने नाट्यकला का रोचक एवं पाण्डित्य-पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हुये मौलिक कथा में कुछ परिवर्तन भी किया है। मुरारि के इस नाटक में नाद माधुर्य, भाव प्रकाशन-प्रवणता और सरस उपमायें दर्शनीय हैं। आपका भाषा पर असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। यही कारण है कि उनकी रचना में शब्द चमत्कार एवं समास बहुल पदावली का प्रचुर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। मुरारि नाट्यकला में भवभूति की अपेक्षा सफल नहीं कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनकी रचना में व्याकरण के दुर्बोध प्रयोगों की बहुलता प्राप्त होती है, जो नाटकीयता का प्रबल दोष है। पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय जी ने आपके विषय में कहा है कि—

"कविता में प्रौढ़ता है, ओज का प्रकर्ष है, वर्णन की बहुलता है परन्तु हम उस सुकुमारता को नहीं पाते जो हमें कालिदास की कविता में मिलती है और न वह मानव भावों को परख पाते हैं।

शक्ति भद्र—शक्ति भद्र का जन्म केरल प्रान्त में हुआ था। आप आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के शिष्य थे। इनका समय ८०० ई० के लगभग माना जाता है। आपने "आश्चर्य चूणामणि" नामक नाटक की रचना की है। इस नाटक की कथा रामायण से ग्रहण की गई है। इसका प्रधान रस आश्चर्य रस है, अभिनय की दृष्टि से यह सफल नाटक है। म० प० कुप्पू स्वामी ने "आश्चर्य चूणामणि" को उत्तररामचरित के उपरान्त रामायण की कथा पर आधारित सर्वश्रेष्ठ नाटक माना है। यद्यपि भवभूति के उत्तररामचरित की तुलना यह नाटक नहीं कर सकता है, तथापि अभिनेयता की दृष्टि से विमर्श करने पर यह एक उत्कृष्ट नाटक है। इसके अतिरिक्त आपकी एक अपूर्ण रचना "उन्माद वासवदत्ता" का नाम सुना जाता है और आपकी एक अन्य पूर्ण रचना "वीणा-वासवदत्ता" का प्रकाशन मिलता है, शक्ति भद्र ने स्वयं "आश्चर्य चूणामणि" की प्रस्तावना में लिखा है, कि उनका नाटक दक्षिण देश में सबसे पहला नाटक है। यह सम्भव हो सकता है कि केरल में "आश्चर्य चूणामणि" नामक नाटक सर्वप्रथम नाटक हो।

दामोदर मिश्र—आपकी कृति का नाम हनुमन्नाटक है। इसके श्लोकों को आनन्दवर्धन ने "ध्वन्यालोक" में उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है। अतः आपका समय ८५० ई० से पूर्व ही माना जाना चाहिये। हनुमन्नाटक का एक प्राचीन और एक नवीन संस्करण प्राप्त होता है। प्राचीन संस्करण के रचयिता दामोदर मिश्र और नवीन संस्करण के रचयिता मधुसूदन दास मिश्र हैं। प्राचीन संस्करण में चौदह एवं नवीन संस्करण नव अङ्क हैं। इस नाटक में प्राकृत का अभाव है और विदूषक का भी अभाव है तथा गद्य की अपेक्षा पद्यों की अधिकता है। पात्रों की संख्या कम है, अभिनेयता की न्यूनता है और वर्णनात्मक शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। कहीं-कहीं तो प्राच्य कवियों के श्लोकों को ही उतार दिया है। इसकी रचना का आधार रामायण की कथा है।

क्षेमीश्वर—इनका समय ९०० ई० के लगभग माना जाता है। ये राजा महेन्द्रपाल की राज्य सभा के दरबारी कवि थे। आपने "नैषधानन्द" में नल-दमयन्ती की कथा को आधार मानकर रचित किया है। तथा अपने दूसरे नाटक "चण्डकौशिक" में सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा को ग्रहण

किया है। नाटकीय दृष्टि से ये दोनों नाटक सामान्य नाटकों में गिने जाते हैं। "चण्डकौशिक" की कथा को आधार मानकर हिन्दी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने सत्यवादी हरिश्चन्द्र नामक नाटक की रचना की है।

राजशेखर—राशेखर ने अपनी कृतियों में उद्भट एवं आनन्दवर्धन का नाम स्पष्ट रूप से स्मरण किया है। अतः आपका समय ९००ई० के आस-पास होना चाहिये। राजशेखर ने (१) वालरामायण (२) वालमहाभारत (३) विद्धशाल-भञ्जिका और (४) कर्पूरमञ्जरी नामक चार नाटकों की रचना की। वाल-रामायण की रचना रामायण कथा पर आधारित है। "विद्धशालभञ्जिका" की रचना 'मालविकाग्निमित्र" और "रत्नावली" के अनुकरण पर की गई है। इसमें चार अंक हैं इसकी कथा मनोरञ्जक एवं प्रणय प्रसङ्ग से युक्त है। 'कर्पूरमञ्जरी' नाटक आपकी एक श्रेष्ठ कृति है। यह सट्टक प्रकार का रूपक है। इसका कोई भी पात्र संस्कृत में नहीं बोलता अपितु सभी पात्र केवल प्राकृत में ही वोलते हैं। "कर्पूरमञ्जरी" में कर्पूरमञ्जरी और राजा चण्डपाल की प्रणय-कथा का मनोरञ्जक चित्रण प्राप्त होता है।

दिङ्नाग—संस्कृत साहित्य में दिङ्नाग नाम से दो व्यक्तियों के नाम प्राप्त होते हैं। प्रथम दिङ्नाग वे हैं जिनका नाम कालिदास के मेघदूत में प्राप्त होता है। कालिदास के समकालीन बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग को नाटककार स्वीकार करना उचित प्रतीत नहीं होता है। अतः द्वितीय दिङ्नाग को ही "कुन्दमाला" का रचयिता मानना उचित प्रतीत होता है। इनका समय १००० के लगभग मानना चाहिये। 'कुन्दमाला' की रचना उत्तररामचरित पर आधारित एवं प्रभावित प्रतीत होती है। इसमें राम के राज्याभिषेक के पश्चात् की कथा का चित्रण प्राप्त होता है और इसमें करुण रस की प्रधानता परिलक्षित होती है। आपकी रचना शैली सरल, प्रसाद गुणयुक्त एवं भाषा परिमार्जित है। समास-युक्त पदावली का अभाव सा दृष्टिगोचर होता है। करुण रस की सफल अभि-व्यञ्जना व्यक्त हो रही है।

कृष्णमिश्र—आपने केवल एक 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक की रचना की है। आपका समय ११०० ई० के लगभग माना जाता है आप जैजाक भुक्ति के राजा कीर्तिवर्मा के राज्य में विद्यमान थे। आपने संस्कृत साहित्य

में प्रतीकात्मक नाटक लिखकर रूपक के क्षेत्र में एक नवीन परम्परा का सूत्रपा किया है। इन्होंने अमूर्त भावों को मानवीकरण रूप में चित्रित करते हुये दा निक तत्वों का विवेचन किया है।

जयदेव—आपका जन्म विदर्भ देश के कुण्डित नगर में हुआ था। आप माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम महादेव था। ये गीतगोविन्दक जयदेव से भिन्न हैं। इनका समय १२०० ई० के लगभग माना जाता है आपकी प्रसिद्ध रचना एवं नाटक "प्रसन्नराघव" है। आपने चन्द्रालोक रचना करके अलङ्कार-ग्रन्थकार के रूप में प्रचुरख्याति प्राप्त की है। "प्रस राघव" में रामायण की कथा का अतीव रोचक चित्रण किया है। इसमें अ नेयता की अपेक्षा कवित्व की अधिकता प्राप्त होती है। भाषा परिमार्जित, लि पदावली एवं प्रसाद गुणयुक्त है।

वत्सराज—ये कालिंजर के राजा "परिमार्दिदेव" के मन्त्री थे। अतः इन समय १२०० ई० के लगभग माना जाता है। आपने छः नाटकों की रचना है जिनके नाम (४) कर्पूरचरित (२) किरातार्जुनीय व्यायोग (३) हास्य चूड़ाम (४) रूक्मिणिहरण (५) त्रिपुरदाह (६) समुद्रमन्थन है।

आपके विविध प्रकार के लघुकाय रूपकों में नाटकीयता, रोचकता, कौ लता आदि का सफल चित्रण प्राप्त होता है।

इस प्रकार भास के समय से लेकर १२०० ई० तक निरन्तर संस्कृत नाट साहित्य विकसित होता हुआ चरमोन्नति को प्राप्त हुआ और निरन्तर आज संस्कृत नाट्य-साहित्य अवाध गति से विकसित होता हुआ विश्व का मनो करता हुआ सद्यःपरनिवृत्ति का कारण रहा है। तथा जिसकी मौलिक प्राञ्जलता, मधुरता, आह्लादकता, उदारता, उत्कृष्टता आदि गुणों की पताका विश्व में फहरा रही है।

बारहवीं शताब्दी—११२४ ई० के लगभग यशचन्द्र ने "कुमुदच नामक प्रकरण की रचना की है। १२वीं शताब्दी में कविवर शंखधर ने ल मेलक" नामक प्रहसन अति प्रसिद्ध एवं अतीव मनोरंजक है। "लटका मेल शब्द का अर्थ धूर्त सम्मेलन है। इसी शताब्दी में महाराज विग्रहरा किरातार्जुनीय की कथा को नाटकीय रूप प्रदान किया। जैन मतावलम्बी राम

ने नवविलास, राघवाभ्युदय, यदवाभ्युदय, निर्भय भीम, सत्यहरिश्चन्द्र, कौमुदी मित्रानन्द आदि अनेक नाटकों की रचना की है। सुभट ने 'दूतागंद' नामक छाया नाटक की रचना की है। इसमें रावण एवं अंगद का सम्वाद अति रोचकता के साथ चित्रित किया गया है।

तेरहवीं शताब्दी—तेरहवीं शताब्दी में राजा रुद्रदेव ने दो नाटकों का प्रणयन किया है। जिनके नाम "उषर्गोदिय" और "ययाति चरित" हैं। रामचन्द्र जैन मुनि ने "प्रवुद्ध रौहिणेय", अर्जुन वर्मा के गुरु मदन ने परिजातमञ्जरी (अपूर्ण) जयसिंह सूरि ने "हम्मीर मर्दन" और रवि वर्मा ने "प्रद्युम्नाभ्युदय" की रचना की है।

चौदहवीं शताब्दी—चौदहवीं शताब्दी में राजा प्रताप रुद्रदेव के आश्रित राजकवि ने "सौगन्धिका हरण", मनिक ने 'भैरवानन्द' ज्योतिरीश्वर ने "धूर्तसमागम" और यशपाल ने "मोह पराजय" नामक नाटकों की रचना की है।

पन्द्रहवीं शताब्दी—इस शताब्दी में व्यास रामदेव ने "रामाभ्युदय", पाण्डवाभ्युदय", और "सुभद्रा परिणय", वाणभट्ट ने "पार्वती परिणय", "श्रृंगार भूषण", जीवराम याज्ञिक ने "मुरारि विजय" नामक नाटक की रचना की।

सोलहवीं शताब्दी—इस काल में गोकुलनाथ ने "मुदितमदालसा" और "अमृतोदय", राजा लक्ष्मण माणिक्य देव ने "रन्तुकेतूदय" एवं रवि वर्मा "विलास", विलिनाथ ने "मदन मञ्जरी महोत्सव" की रचना की है।

सत्रहवीं शताब्दी—इस शताब्दी में भूदेव शुक्ल ने "धम विजय" सठकोप ने "वसन्तिका परिणय", कुमार ताताचार्य ने "पारिजात नाटक", रामानुज ने "वसु लक्ष्मी कल्याण", रामभद्र दीक्षित ने "जानकी परिणय", सभ्राज दीक्षित ने "रामचरित" भूभिनाथ ने "चित्तवृत्ति कल्याण" एवं "जीवनमुक्ति कल्याण", भूमिनाथ ने "श्रृंगार सर्वस्व" नामक नाटक की रचना की है।

अठारहवीं शताब्दी—इस काल में काठियावाड़ के जगन्नाथ ने "सौभाग्य महादेव", आनन्दराय मखी ने "विद्या परिणय", मलारी अराधाय ने "शिवलिंग सूर्योदय", शंकर दीक्षित ने "प्रद्युम्न विजय", तंजौर के राजकवि जगन्नाथ ने "वसुमति परिणय", कृष्णदत्त ने "कुवलामाश्वीय", विश्वनाथ ने "मृगांकलेखा";

देवराज ने "बाल मार्तण्ड विजय", वेंकट सुब्रह्मण्यम ने "वसुलक्ष्मी कल्याण' पेरु सूरि ने "वसु मंगल" रामदेव ने "विद्यामोद तरंगिणी" तथा विट्ठल "आदिलशाह" छाया नाटक की रचना की है।

उन्नीसवीं शताब्दी—इस शताब्दी में पद्मनाभ ने "त्रिपुराविजय" बल्लिश ने "ययातितरुणनन्दन", विरार राघव ने "रामराज्याभिषेक" और वा परिणय", रामचन्द्र ने "शृंगार सुधार्णव", म० म० शंकरलाल ने "सावित्रीचरित' ध्रुवाभ्युदय श्री निवास चारी ने "शृंगार तरंगिणी" और "उषा परिणय' भद्रादि राम स्वामी ने "मुक्तावल", वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य ने "चैत्र-यज्ञ काशीनाथ शास्त्री ने "पाञ्चालिकारक्षण" और "यामिनी पूर्ण तिलक' श्रीनिवास धारी ने "ध्रुव चरित और "क्षीराब्धिशयन", पंचायन ने "अम मंगल", मूल शंकर माणिकलाल ने "छत्रपति साम्राज्य", "प्रताप विजय" औ "संयोगिता स्वयंवर" तथा अम्बिकादत्त व्यास ने "सामवत" की रचना की है।

बीसवीं शताब्दी—इस काल में वाई० महालिंग शास्त्री, नीर्यात्रे भीम भट्ट एस० एन० ताड़पत्रीकर, म० म० मथुरा प्रसाद दीक्षित आदि ने "कलि प्रादुर्भाव", "काश्मीर सन्धान स द्यम", "विश्व मोह", "वीर प्रताप", "शंक विजय", "पृथ्वीराज", "भक्त सुदर्शन", "गांधी विजय नाटक" एवं "भार विजय" आदि नाटकों की रचना की है।

प्रश्न २—भवभूति के जीवन और तत्कालीन दशा का विवेचनात्म चित्रण प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—संस्कृत साहित्य में भवभूति का स्थान कालिदास से कम नहीं है तद्यपि भवभूति के जीवनकाल के समय में विशेष प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं तथापि भवभूति द्वारा रचित नाटकों के प्रारम्भ में आपके जीवनवृत्त के सम्बन में जो साक्ष्य मिलते हैं उनके अनुसार ही भवभूति आधुनिक बम्बई राज्य के अन्दर विदर्भ अञ्चल में बसे हुये पद्मपुर के वासी थे। आप जाति से कश्य गोत्र के अदुम्बर ब्राह्मण थे। पिता का नाम नीलकण्ठ था तथा माता का नाम जतुकर्णी था। आपके पितामह (बाबा) का नाम गोपाल भट्ट था। डॉ० भण्डारक का कहना है कि—आप पद्मपुर के निकट महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों का एक ऐस ब्राह्मण वंश मिलता है जो भवभूति की कुल-परम्परा में से है। आपने अप

गुरु का नाम "ज्ञान-निधि" लिखा है। आधुनिक खोजों के अनुसार कुमारिल भट्ट को ही भवभूति ने "ज्ञान-विधि" के नाम से याद किया है।

भवभूति का प्रथम (प्राथमिक) नाम कण्ठ भट्ट था। इस नाम का उल्लेख भवभूति ने नाटकों की प्रस्तावना में किया है। "भट्ट श्री कण्ठप दलाच्छनोभव-भूतिर्नाम" लिखकर यह संकेत किया है कि यह नाम पितृ प्रदत्त है, परन्तु श्री कण्ठ भट्ट नाम के उल्लेख करने से यह सन्देह और उत्पन्न होता है कि भवभूति का यह नाम क्यों पड़ा ? इस सन्देह का समाधान करते हुये कहा है कि पार्वती की प्रार्थना करते हुये श्री कण्ठ भट्ट कहते हैं—

"साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः।"

अथवा

"गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ।"

इन श्लोकों के अन्तर्गत प्रयोग किये गये भवभूति शब्द सुन्दर प्रयोग रसिक एवं सामाजिक विद्वानों ने श्री कण्ठ भट्ट को ही भवभूति के नाम से कथित होने लगा।

भवभूति का एक अपर नाम 'उम्वेक' भी उल्लिखित है। भवभूति का उम्वेक नाम है या नहीं है इस पर सभी मनीषि वैमत है। श्री एम० वी० लेले ने मालतीमाधव के ५०० वर्ष प्राचीन हस्तलिखित लिपि के अनुसार भवभूति और उम्वेक नाम एक ही माना है। कुमारिल भट्ट का शिष्य माना है। इस मत के मानने वाले विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं—कुप्पू स्वामी शास्त्री, महामहोपाध्याय पी० वी० काणे, एस० आर० रामनाथ शास्त्री और पं० बलदेव उपाध्याय है। इस मत के विरोधी विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं—डॉ० सी० कुन्हन राजा, म० म० डॉ० मिराशी हैं।

यद्यपि भवभूति और उम्वेक के सम्वन्ध में निश्चय रूप से कुछ कहना कठिन प्रतीत होता है। तथापि यह निश्चय है कि भवभूति की विद्वत्ता वेद, उपनिषद्, दर्शन, व्याकरण, काव्य शास्त्र और काव्य नाटक आदि अनेक विषयों के अद्वितीय पण्डित थे। आपका शिव-भक्त होना आपके नाटकों की प्रस्तावना में वर्णित है कि शैवमत के आप मानने वाले हैं। क्योंकि आपने शिव भक्ति से उत्साहित होकर ही उज्जयिनी के काल-प्रेमी भगवान् चन्द्रमौलि के सामने अपने नाटकों का अभिनय करने के लिये लिखा है कि उनके नाटक भगवान् शंकर के

सामने खेले जावें। भवभूति के नाटकों के आलोचनात्मक अध्ययन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि आपका प्रारम्भिक जीवन बड़ा ही कष्टमय रहा। इसी कारण तत्कालीन समय में ख्याति नहीं प्राप्त कर सके। सम्मान प्राप्त करने के स्थान पर इन नाटकों का उपहास उड़ाया। इसीलिये 'उत्तररामचरित' में वर्णित है कि लोकापवाद (लोकनिन्दा) से बचना एक कठिन कार्य है, कुछ संकुचित प्रकृति वाले लोगों का स्वभाव ही छिद्रान्वेषण होता है। ऐसे व्यक्तियों से दुःखी होकर मालतीमाधव में लिखा है कि—

"ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रतिनैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम तु कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

उनका कहना है कि इन नाटकों का आशय मूर्खों के लिये नहीं है जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है। वसुन्धरा असीमित है समय अनन्त है। यह अवश्य है कभी न कभी किसी स्थान पर मेरे समक्ष उत्पन्न होने वाला व्यक्ति मेरे इन नाटकों का सही मूल्यांकन करेगा।

महाकवि भवभूति द्वारा प्रणीत मालतीमाधव और महावीरचरित की प्रस्तावना में ऐसा वर्णित है कि आपका नटों से प्रगाढ़ सम्बन्ध था और अभिनय करने वाले नटों से बड़ा ही प्रेम वर्णित है। यह भी सम्भावना है कि बाल्यावस्था में भवभूति के नाटकों में सक्रिय भाग लिया होगा। शायद यही कारण हो सकता है कि उन्होंने नाटक लिखना प्रारम्भ किया। जैसा कि आपके नाटकों में प्रारम्भ में लिखा गया है कि नाटकों की रचना अभिनय के लिये की गई है और उज्जयिनी के भगवान् कालप्रिय शंकर के उत्सव पर्व पर उसके नाटक का अभिनय भी किया गया था।

तत्कालीन स्थिति—भवभूति ने अपने नाटकों में तत्कालीन स्थिति के विषय में कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलते हैं, परन्तु इतिहास-वर्णित साक्ष्यों के आधार पर भवभूति को यथेष्ट आदर नहीं प्राप्त हुआ। इनके बाद भवभूति के नाटकों के उदाहरणों को विविध ग्रन्थकारों ने अपनी रचनाओं में आदरपूर्वक उद्धृत किया है। काव्यप्रकाश के रचयिता मम्मटाचार्य (११०० ई०), दशरूपक के रचयिता धनञ्जय, (९९५ ई०) सोमदेव (९५९ ई०), राजशेखर (९०० ई०)

और वामनाचार्य आदि अनेक मनीषियों ने अपनी रचनाओं में भवभूति के नाटकों के उदाहरणों के सम्मान के साथ अवतरित किया है। राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार कहा है। यथा अधोवर्णित श्लोक से स्पष्ट हो जाता है—

"बभूव बल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया विराजते सम्प्रति राजशेखरः॥"

इन प्रमाणों के अनुसार भवभूति का समय वामनाचार्य (८०० ई०) से पूर्व सिद्ध होता है।

कल्हण द्वारा कृत राजतरङ्गिणी (११४८ ई०) से भवभूति के सम्बन्ध में समुचित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। कल्हण ने लिखा है कि कन्नौज के भूमिपाल यशोवर्मा की सभा में दो कवि रहते थे जिनमें एक का नाम भवभूति और दूसरे का नाम वाक्पतिराज था। जैसा कि कल्हण की राजतरङ्गिणी में वर्णित है—

"कविर्नाकपतीराज श्रीभवभूत्यादि सेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥"

कुछ मनीषियों का यह मत है कि वाक्पतिराज भवभूति के शिष्य थे। यद्यपि भवभूति ने वाक्पतिराज नामक स्वशिष्य के रूप में कहीं-कहीं अवतरित हुआ है। तथापि वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत नाटक 'गउड वहो' में राजा यशोवर्मा और भवभूति की काव्य मेघा की प्रशंसा गाते हुए लिखा भी है—

"भवभूतिजलधिनिर्गताः काव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथा निवेशेषु॥"

इससे यह पूर्ण स्पष्ट प्रतीत होता है कि भवभूति और वाक्पतिराज ये दोनों कवि यशोवर्मा के राजकवि थे।

कल्हण ने लिखा है कि काश्मीर के भूपाल ललितादित्य मुक्तापीड ने यशोवर्मा को परास्त किया था। डॉ० स्टीन ने इस घटना का समय ७३६ ई० से पहले माना है। इसके आधार पर भवभूति के समय का निर्णय करने में समुचित सहायता मिलती है। यशोवर्मा कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा थे। विशाखदत्त के आश्रयभूत राजा अवन्तिवर्मा, बाण, मयूर, धावक, दिवाकर जैसे कवियों के आश्रयभूत महाराजा हर्षवर्धन इसी कन्नौज के राजा थे। जो स्वयं उच्चकोटि के कलाकार एवं नाटककार थे।

हर्षवर्धन के पश्चात् कन्नौज के राजा यशोवर्मा हुए जो कि भगवान् राम के भक्त थे और स्वयं 'रामाभ्युदय' नाम के नाटक की रचना की थी। यद्यपि 'रामाभ्युदय नामक नाटक आज प्राप्त नहीं होता परन्तु उसके उदाहरण विविध काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलते हैं। यशोवर्मा ने ८वीं सदी में शासन-भार को सम्भाला और ७३३ ई० के करीव काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड नामक राजा से पराजित हुआ था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति यशोवर्मा नामक राजा के दरवारी कवि थे। यशोवर्मा ८वीं शताब्दी के आरम्भ में राजा बना था और ७३३ ई० के करीब ललितादित्य मुक्तापीड द्वारा पराजित हुआ था इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति का समय ७०० से ७३३ ई० के आस-पास का होना चाहिये। डॉ० गंगा सागर राय के मतानुसार भवभूति का समय यही है। डॉ० कीथ ने उसका समय ७०० ई० के करीब माना है। अतः यह निश्चित है कि भवभूति का समय ७०० ई० के लगभग मान लेना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

प्रश्न ३—भवभूति द्वारा विरचित नाटकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए 'उत्तररामचरित' का स्थान निर्धारित कीजिये।

(मेरठ वि० वि० १९६९)

उत्तर—भवभूति ने तीन नाटकों की रचना कि है जिनके नाम इस प्रकार से हैं—(१) मालतीमाधव, (२) महावीरचरित और (३) उत्तररामचरित। आपकी प्रथम कृति मालतीमाधव को प्रकरण और शेष दो कृतियों को नाटक कहते हैं। प्रस्तुत नाटकों के अतिरिक्त भवभूति के फुटकल कुछ साहित्य भी मिलता है। लेकिन उनका स्थान गौण माना जाता है।

(१) मालतीमाधव—इस नाटक में १० अङ्क हैं। भवभूति ने मालती और माधव की कल्पना से प्रणय-कथा का चित्रण वड़ी सजीवता एवं सवलता के साथ प्रस्तुत किया है। मालती और माधव दोनों मदनोत्सव में एक दूसरे के आपस में दर्शन मात्र से एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। पद्मावती के भू-पाल के मन्त्री भूरिवसु अपनी सुता मालती का दाम्पत्य सूत्र-वन्धन नन्दन के साथ करने का निश्चय करते हैं दूसरी तरफ कामन्दकी गुप्त रूप से मालती को माधव के

साथ दाम्पत्य सूत्र वन्धन करने के लिये रजामन्द कर लेती है। इस कथना (प्रणय-कथा) के आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुये इस प्रकरण में वर्णन किया है। भारतीय नाटकों की प्रमुख विशेपता यह रही है कि उनका अन्त सुखान्त ही हुआ है इसी कारण इसका अन्त भी मालती और माधव का पारस्परिक विवाह दिखाकर किया है।

(२) महावीरचरित—महावीरचरित नामक नाटक ७ अङ्कों का नाटक है। इस नाटक का कथानक का आधार रामायण की कथा का पूर्वार्ध भाग है अर्थात् इसमें राम विवाह, राम वन गमन, सीता हरण, राम-राज्याभिपेक का वर्णन किया गया है। कौशिक ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिये दशरथ के पास जाते हैं दशरथ के न चाहने पर भी उनको अपने पुत्रों—राम-लक्ष्मण को देना पड़ा। विश्वामित्र के अध्वर (यज्ञ) के आलोकन के लिये जनक के अनुज कुशध्वज सीता और उर्मिला के साथ आते हैं। इसी यज्ञस्थली पर ही रावण का दूत अपने स्वामी रावण का जानकी के साथ विवाह करने की सूचना प्रदान करता है। इस सन्देश को कोई भी नहीं सुन सका उसी बीच में ताड़का नाम की राक्षसी यज्ञ को नष्ट करने के उद्देश्य से आ गई। कौशिक के संकेत मात्र पर राम ने ताड़का का वध कर दिया। तदनन्तर मिथिलापुरी में गये वहाँ शिव-धनुष का खण्डन करके सीता के साथ पाणि-ग्रहण किया। राम-सीता के विवाह का समाचार वही दूत रावण के पास ले जाता है।

रावण वड़ा ही कूट-नीतिज्ञ था। उसने नीति-कुशल मन्त्री माल्यवान ने राम के विरुद्ध परशुराम को भड़काया और युद्ध भी करा दिया। इस युद्ध में परशुराम की पराजय हुई। तत्पश्चात् रावण की भगिनी शूर्पणखा ने कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में राम के साथ गई। वह कैकेयी की तरफ़ से एक पत्र लिखती है। उस पत्र के अनुसार राम-सीता लक्ष्मण सहित वन में चले गये। वहाँ वन में रावण सीता का हरण कर लेता है। हनुमान सीता का पता लगाते हैं, रावण पर आक्रमण करके उसका वध करते हैं। रावण का राज्य उसके अनुज विभीषण को देकर सीता के साथ अयोध्या आकर अयोध्या का राज्यभार ग्रहण किया।

(३) उत्तररामचरित—यह ७ अङ्कों का नाटक है। इसमें राम के राज्य-भार ग्रहण करने के पश्चात् की कथा का सरलतापूर्ण वर्णन किया गया है।

प्रथम अङ्क में वर्णित कथा—नान्दीपाठ तथा आरम्भ के अन्दर राम सीता को विश्वास दिलाने के लिये अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। इसी बीच में ऋष्य-शृङ्ग के आश्रम से वसिष्ठ गुरु के द्वारा भेजे गये अष्टावक्र आते हैं, वे राम और सीता से वसिष्ठ तथा अरुन्धती के संदेश को कहते हैं। अष्टावक्र के वाद लक्ष्मण सीता के पितृ-विरह से उत्पन्न कष्ट को दूर करने के लिये राम के व्यतीत जीवन का सजीव चित्रण चित्रों के माध्यम से किया गया है इन चित्र दर्शनों के सन्दर्भ में सीता गंगावलोकन के वाद गंगा-स्नान की इच्छा व्यक्त करती हैं। गर्भवती सीता की इच्छा को पूर्ण करने के लिये राम ने लक्ष्मण को आज्ञा प्रदान की। इसी समय सीता पुरुषोत्तम राम के हाथ का तकिया वनाकर सो जाती हैं। इसी बीच में जनता के भावों को जगाने के लिये भेजा गया गुप्तचर दुर्मुख आता है और वह राम के विषय में उत्पन्न लोकापवाद की सूचना देता है। यह सुनकर राम अचेत हो जाते हैं। उसे ध्यान में रखते हुये राम लक्ष्मण द्वारा सीता को तपोवन में भेजते हैं।

द्वितीय अङ्क में—द्वितीयांक के प्रारम्भ में आत्रेयी वाल्मीकि के आश्रम में आकर कुश और लव की अद्वितीय प्रतिभा का चित्रण वासन्ती से करती है और उन दोनों लड़कों को जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध है। यह भी कहती हैं। वासन्ती से आत्रेयी वाल्मीकि द्वारा क्रौञ्च वध से व्याध को श्लोक में शाप की कथा सुनाई गई है और रामचरित लिखने की, राम द्वारा सीता की काञ्चन मूर्ति वनाकर अश्वमेध यज्ञ की घटना का चित्रण करती है। इस समय राम वहाँ आकर शम्बूक को मारकर उसे दिव्य वपु प्रदान करती है। शम्बूक के दिव्य शरीर प्राप्त कर लेने पर राम के शुभागमन की सूचना अगस्त्य और लोपामुद्रा को मिलती है।

तृतीय अङ्क में—विष्कम्भक में मुरला और तमसा नाम की दो नदियों के आलाप से विदित होता है कि त्यागी गयी सीता अपमानवश दुःखी हुई गङ्गा में कूद पड़ती है और गङ्गा में ही सीता से दो पुत्रों का जन्म होता है। स्तन-पान को छोड़ने के वाद कुश और लव गङ्गा देवी वाल्मीकि को दे देती है जब सुतों की आयु ११ साल की होने पर १२वें जन्म-दिवस पर वह गङ्गा देवी की आज्ञा से सूर्य पूजा करने के लिये तपोवन में कुसुम चयन के लिये घूमती हुई दृष्टिगोचर होती है। इसी समय के वीच में राम भी वहीं आ जाते हैं राम की

विरह से तप्त अवस्था का अवलोकन करके जानकी मूर्छित हो जाती है परन्तु राम भी सीता के विरह में तप्त होने के कारण परिचित उपवन को देखकर दो वार वेहोश होकर गिर पड़ते हैं। जानकी तमसा की आज्ञा से 'तिरस्कार-रिणी विद्या' के प्रभाव से प्राच्छन्न होकर राम को छूकर होश में लाती है। इसी वीच राम और वासन्ती का वार्तालाप होता है। तदनन्तर रामचन्द्रजी अपनी राजधानी अयोध्या में आ जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क में—ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ में वशिष्ठ, कौशल्या आदि मातायें और मिथलेशराज ने दाण्डायन और सौधतकी नाम के तपस्वी विद्यार्थियों से सीता के वाल्मीकि के आश्रम में निवास करने की सूचना प्राप्त करते हैं। वहाँ लव वशिष्ठ और जनक की वार्ता के मध्य में आता है। उससे पूछने पर वह अपने बड़े भाई का नाम कुश वतलाता है। इसी बीच शेषावतार श्री लक्ष्मण जी का सुपुत्र चन्द्रकेतु सेना लेकर आ जाता है। चन्द्रकेतु ने अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ वीर घोषणा करता हुआ प्रवेश करती है। चन्द्रकेतु के ऐसे वीर घोषणा को सुनकर ही लव के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुरा लिया।

पञ्चम अङ्क में—इस अङ्क ने वीर लव चन्द्रकेतु की सम्पूर्ण सेना को पराजित कर देता है। सुमन्त्र लव के जृम्भकास्त्रों को देखकर आश्चर्य से चकित हो जाता है। इसके पश्चात् लव और चन्द्रकेतु का नानाविध युद्ध आरम्भ हो जाता है।

षष्ठ अङ्क में—विद्याधर युग के वार्तालाप से यह विदित्त होता है कि लव और चन्द्रकेतु के इस भयङ्कर युद्ध में आग्नेय, वारुण और वायव्य आदि अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया जा रहा है। इस समय विमान विशेष में विराजमान राम भी युद्ध प्रांगण में आ पहुँचे। चन्द्रकेतु के सद्व्यवहार से प्रभावित होकर लव चन्द्रकेतु के कहने पर राम को प्रणाम करता है। राम लव को सस्नेह प्यार करते हैं। इसी बीच में रौद्ररूपधारी कुश वहाँ आता है लव सभ्यतावश अपने बड़े भाई कुश से श्रीराम को प्रणाम के लिये कहता है। कुश द्वारा प्रणाम करने पर श्रीराम उसको भी लव की भाँति सस्नेह प्रेम करते हैं। लव और कुश की सीता के सादृश आकृति देखकर रामचन्द्र जी भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इसी बीच वशिष्ठ, अरुन्धती वाल्मीकि, मिथिलेश, कौशल्या आदि श्रीराम के पास आते हैं।

अन्तिम अङ्क में—गर्भाङ्क नाम के एक अवान्तर नाटक की योजना करके सम्पूर्ण नाटक में वर्णित कथानक का दृश्य प्रस्तुत किया है। इस गर्भाङ्क के अभिनय के अवलोकन के लिये जाह्नवी तट पर उपस्थित होकर समस्त देश-वासी जानकी का अभिनन्दन करते हैं और देवर्षि, गन्धर्व, लोकपाल आदि कुसुम वृष्टि करते हैं। इसी स्थान पर राम, सीता, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कुश, लव आदि का सुखद मिलन होता है नाटक के कथानक का सुखान्त में अवसान होता है।

महाकवि भवभूति ने रामायण के उत्तर भाग की सूक्ष्म कथा को लेकर उसको विवेचनात्मक और प्रभावोत्पादक ढंग से इस प्रकार चित्रण किया है कि जिसका संस्कृत साहित्याकाश में अद्वितीय स्थान है। करुण रस का समुन्द्र वह जाता है। अपि ग्रावा रोदिति दलित वज्रस्यमपि हृदयम्" यह इसका प्रमाण स्वरूप है। शृङ्गार के दो पक्ष होते हैं वियोग और संयोग परन्तु भवभूति ने संयोग शृङ्गार एवं वियोग शृङ्गार का बड़ा ही सुललित वर्णन किया है। जिसके कारण आप एक सफल चित्रांकनवेत्ता प्रतीत होते हैं। आपने 'बाल्यावस्था की मुग्धकारिणी सहज सुकोमल, किशोरावस्था की स्वाभाविक चाञ्चल्य मर्यादाओं से संयमित यौवन की उद्दाम, शृङ्गारिक भावना और प्रौढ़ स्नेहिल भावनाओं का सफल वर्णन किया है। यही नहीं कि भवभूति ने करुण रस शृङ्गार का ही इतना कमनीय वर्णन किया, अपितु रौद्र, वीर और बीभत्स आदि रसों का बड़ा ही सुललित वर्णन किया है। करुण रस से ओत-प्रोत इस 'उत्तररामचरित' में वीर रस का उदाहरण हमको लव की वीरतापूर्ण कार्य से मिलता है कि—

"वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव।"

भवभूति छन्दों के कुशल खिलाडी या सिद्धहस्त हैं। आपने प्रसङ्गानुसार, वातावरणानुकूल तथा समय के औचित्य के अनुसार छन्दों का सृजन किया है और अपने अद्वितीय कौशल को प्रदर्शित किया है। रौद्र एवं बीभत्स रस का वर्णन करने के लिये आपने शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे-लम्बे छन्दों का आश्रय लिया है। सरल एवं मार्मिक चित्र उपस्थित करने के प्रसङ्ग में अनुष्टुप छन्द का भी प्रयोग किया है। इस छन्द के प्रयुक्त होने से भवभूति की प्रतिभा का

उत्कठत्व प्रदर्शित होता है इसके साथ ही साथ आपने इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी जैसे छन्दों का प्रयोग तो शृङ्गारिक एवं सौन्दर्य वर्णन में किया है। भवभूति को इन सभी छन्दों में से शिखरिणी छन्द सर्वाधिक प्रिय था। इसका प्रयोग आपने करुण रस के वर्णनों में किया हैं। इसी की प्रशंसा करते हुये क्षेमेन्द्र कवि ने भवभूति के प्रिय छन्द के विषय में कहा भी है—

भवभूतेः शिखरिणी विनिर्मलतरङ्गिणी।
रुचिरा घन सन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ।।

महाकवि भवभूति द्वारा प्रणीत उत्तररामचरित में दो ही प्रमुख घटना है। प्रथम घटना तो यह है कि पुरुषोत्तम राम द्वारा सीता का परित्याग और दूसरी घटना सप्तम अङ्क में सीता और राम का मिलन है। वस्तुतः भवभूति द्वारा रचित उत्तररामचरित करुण रस की एक अद्वितीय कृति है। इसीलिये किसी आलोचक ने कहा है—"उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"।

यह सभी मनीषियों ने बाधा रहित होकर यह मुक्त स्वर से स्वीकार करते हैं कि भवभूति करुण रस की एक विचित्र कृति है आप स्वयं एक सफल नाटककार एवं चित्रकार हैं। आपका उत्तररामचरित करुण के क्षेत्र में ऊपर प्रतिस्पर्धा (होड) नहीं रखता है। अतः उत्तररामचरित करुण रस को पुष्ट करने वाला एवं उत्कट नाटक है।

प्रश्न ४—कवित्व शक्ति की दृष्टि से भवभूति की भाषा-शैली पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर—संस्कृत साहित्य में भवभूति भी कालिदास के समान हैं। आपने अपनी कृतियों में प्रौढ़ता, वाणी का औदार्य और अर्थ-गौरव की त्रिवेणी प्रवाहित कर दी है। किसी भी कृति में इन तीनों गुणों का प्रयुक्त होना उस कृति के उत्कर्ष का सूचक है, अपकर्ष का नहीं। यदि हम भवभूति के नाटकों का पर्यालोचन करें तो उनकी कृतियों में इन तीनों गुणों (प्रौढ़ता, भाषा औदार्य तथा अर्थ-गौरवता) की त्रिवेणी सी प्रतीत होती है।

काव्यशास्त्रियों ने काव्य-रचना के लिये तीन प्रकार की शैली का निर्धारण किया है, वे क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) वैदर्भी, (२) गौड़ी और (३) पाञ्चाली। भवभूति ने अपने तीन सुप्रसिद्ध कृतियों में वैदर्भी और गौड़ी का ही प्रयोग

किया है। लालित्ययुक्त पद-विन्यास, कोमलकान्त पदावली और समासरहित अथवा अल्पकाय समस्त वाक्यों से युक्त रचनायें वैदर्भी रीति मानी जाती है अर्थात् वैदर्भी रीति में मधुर, कोमल, ललित एवं समास रहित या लघुकाय समस्त पदावली का प्रयोग करना चाहिये। इसके विपरीत गौड़ी रीति में ओज गुण, विशेष दीर्घकाय समस्त पदावली का प्रयोग किया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदर्भी और गौड़ी शैली के लक्षणों में अथवा रचना में या रचना में पूर्व-पश्चिम का अन्तर प्राप्त होता है। अतः कोई एक आध विरल कवि ही एक ओर कोमलकान्त, ललित एवं मधुर पदावली और दूसरी ओर दीर्घकाय, कृत्रिम भाषा और ओज गुण युक्त पदावली का प्रयोग करके कोमल भावों का सफल चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर ओज प्रधान कठोर एवं समास बहुल भाषा का सफल प्रयोग किया है।

भवभूति ने लव-कुश की अद्वितीय प्रतिभा का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसको कि अनसुया के मुख से वैदर्भी शैली में कहलवाया है कि गुरु तो मूर्ख और बुद्धिमान दोनों को एक साथ शिक्षा प्रदान करता है। वे गुरु बुद्धिमान की बुद्धि में प्रवेश नहीं करते और मूर्ख की प्रतिभा शक्ति को नष्ट करते। परन्तु दोनों का परिणाम सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है कि जिस विषय को बुद्धिमान साफल्य से ग्रहण कर लेता है वही मूर्ख उस विषय के ज्ञान से वंचित रह जाता है क्योंकि मणि किसी वस्तु के प्रतिविम्व को शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है, परन्तु मृतिका का ढेला उसी वस्तु के प्रतिविम्व को ग्रहण करने में पूर्णरूपेण असमर्थ है। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिये रसानुभूति भवभूति ने वैदर्भी रीति में एक श्लोक-रचना की है। जो इस प्रकार है—

"वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव तथा जडे,
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद् यथा,
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः॥

इस उदाहरण में लालित्य, कान्त और समास-रहित पदावली का प्रयोग वैदर्भी में हुआ है इसको स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

इसके विपरीत कवि ने अधोलिखित श्लोक में ओजप्रधान, दृढ़ समास वन्धन, पदावली का प्रयोग एवं बनावली भाषा से विभूषित गौड़ी रीति का परिचय प्रस्तुत किया है। यही नहीं अपितु इस श्लोक में एक विचित्रता यह है कि इस श्लोक के पूर्वार्ध में वैदर्भी और श्लोक के उत्तरार्ध में गौड़ी रीति का सम्मिश्रित वर्णन करके अद्वितीय कवित्व शक्ति एवं प्रकाण्ड-विद्वत्ता का सूचक है। यह विचित्रता-युक्त श्लोक लव और चन्द्रकेतु के समर के मध्य प्रसंग में लिखा है—

"यथैन्दावानन्दं व्रजति समुपोढ़े कुमुदिनी,
तथैवास्मिन्दृष्टिमर्म कलहकामः पुनरयम्।
रणत्कारगुरुक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु-
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालव्रणमुखः॥

यह लव का कथन है कि—जिस प्रकार कमलिनी पूर्णमण्डलाकार चन्द्रोदय का अवलोकन करके प्रसन्नता से विकसित हो जाती है, उसी प्रकार मेरे नयन इस चन्द्रकेतु को देखकर प्रसनन्ता से विकसित हो रहे हैं। परन्तु हाथ यद्धोत्सुकता के कारण चाञ्चल्य को नहीं त्याग रहा। जिस मेरे इस हाथ ने भयंकर टंकार और गम्भीर नाद करती हुई प्रत्यंचा से सुशोभित होकर इस विशाल धनु को धारण कर रहा है और जो हाथ वीर भावना से प्रेरित होकर उद्विग्न हो रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम दो पादों की भाषा सरल समासरहित, सुकोमल होने के कारण वैदर्भी रीति का उदाहरण है और अन्त के दो पदों में ओज प्रधान, कठिन, ओज गुण प्रधान, विकट समास, बहुल पदावली के प्रयुक्त होने के कारण गौढ़ी रीति का उदाहरण है। अतः श्लोक में एक साथ गौड़ी और वैदर्भी शैली का सम्मिश्रण प्रस्तुत करके भवभूति ने अपने अपार शब्द-ज्ञान-भण्डार का एक निदर्शन प्रस्तुत किया है। इसी कारण आपने अपनी भाषा की असाधारण, दक्षता एवं सामर्थ्य का उद्घोष करते हुये स्वयं भवभूति ने कहा है कि—भाषा तो मेरे संकेतों पर नृत्य करती हुई आ जाती है यथा उनके शब्दों में दर्शनीय है—

"यं ब्रह्मणमियं देवी माग्वश्येवानुवर्तते॥"

रसानुभूति भवभूति के संकेतों पर नाचने वाली एवं पराधीन वाण स्वरूप उन क्लिष्ट एवं मधुर वाक्य-विन्यासों से सुसज्जित कृतियों से स्पष्ट रूप से अवलोकन किया जा सकता है। उनका भाषा पर अद्वितीय अधिकार है। भवभूति ने भाषा का सफल प्रयुक्त पात्रों के अनुरूप किया है। अतः उन्होंने बाल-वृद्ध और युवा पात्रों के अनुरूप वशवर्तिनी भाषा का प्रयोग करके परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। आश्रमवासी की भाषा में पावित्र्य का भाव दृष्टिगोचर होता है और जनकादि वृद्धों की भाषा दार्शनिक भावों में ग्रथित है। अतः सर्वत्र पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करके भवभूति ने असाधारण काव्यत्व शक्ति एवं सुन्दर शब्दचयन का परिचय प्रस्तुत किया है।

वर्णना शक्ति की सजीवता भी भवभूति की दर्शनीय है। उन्होंने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों के कमनीय स्वरूपों का चित्रण किया है। परन्तु वियोग का व्यथापूर्ण जो चित्र प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुष्प्राप्य है। उस करुण-गीति का श्रवण करके मानव तो क्या कठोर प्रस्तर खण्ड भी रो पड़ते हैं, जैसा कहा भी है—"अपि ग्रावा रोदिति दलति वज्रस्यापि हृदयम्।" प्रस्तुत उक्ति सर्वथा सत्य प्रतीत होती है। यही नहीं भवभूति मनोविज्ञान के तत्त्व-वेत्ता थे। अतः मानव के अन्तःकरण के विभिन्न स्वरूपों का साफल्य चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने शैशवावस्था की मुग्ध-कारिणी सफलता, किशोरावस्था का स्वाभाविक चाञ्चल्य, मर्यादित यौवन की शृंगार भावना प्रौढ़ स्नेह की प्रवृत्तियों का मनमोहक चित्र प्रस्तुत करके भवभूति ने अपनी वर्णना शक्ति की व्यापकता का परिचय प्रस्तुत किया है।

रसानुभूति भवभूति पक्के रससिद्ध हैं। आपने अपनी कृतियों में केवल शृंगार और करुण रस अपितु वीर, रौद्र, वीभत्स, हास्य आदि अन्य रसों का भी बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। वीर रस की सफल अभिव्यञ्जना आपके 'महावीरचरित' में दृष्टव्य है। इसके अतिरिक्त करुण रस का अगाध समुद्र "उत्तररामचरित" है, जिसमें करुण के साथ-साथ वीर रस की सफल झांकी लव और चन्द्रकेतु के युद्ध के समय दीख पड़ता है। लव की वीरता और वीरोचित आकृति का चित्रण करते हुये कवि ने लिखा भी कि—

"दृष्टिस्तृणीकृतजगत्र्यसत्वसारा,
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।
कौमारकेऽपिगिरिवद् गुरुतां दधानः,
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥

इस (लव) की ऐसी दृष्टि है कि—जिसमें सामने लोकत्रय की सारभूत सभी शक्तियाँ तिनके के सादृश प्रतीत होती हैं। इसकी धीर और उद्धत गति युक्ता वसुन्धरा भी कम्पित हो रही है। बालक होते हुये भी गिरि सादृश गरिमा वाला है। यह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वयं वीर रस ही आ रहा हो या साक्षात् दर्प हो।

इस प्रकार वीर रस के सफल वर्णन के अलावा रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों का भी सफल वर्णन किया गया है। 'महावीरचरित' के तृतीय अंक में परशुराम जनक सम्वाद के प्रसंग के परशुराम के कथन में रौद्र रस का सफल एवं प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतः 'मालतीमाधव' पञ्चम अंक में पितृ-सद्यो के प्रेतों का चित्रण करते हुये वीभत्स और भयानक रसों का सफल वर्णन प्रस्तुत किया है। अधोलिखित श्लोक में वीभत्स और भयानक रस का कितना कमनीय चित्र प्रस्तुत किया है, जो सराहनीय है—

"उत्कृत्योत्कृत्यकृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा
... ... क्रव्यमव्यग्रमत्ति ।

अरे ! यह प्रेत सर्वप्रथम तो मृत देह के चर्म को उधेड़ रहा है और अंसे, हैं, पीठ आदि स्थानों के अत्यन्त फूले हुए, तीव्र दुर्गन्धित मांस को खा रहा । मांस-भक्षण करके बड़ी-बड़ी आँखे फाड़ रहा है। जिस प्रेत की दन्तावली क रही है। जो धनाढ्य प्रेत अपनी गोद में स्थित अस्थिपञ्जर के मांस कुरेद-कुरेद कर खा रहा है। यह श्लोक वीभत्स और भयानक रस का ल चित्र भवभूति की शब्द-विन्यास का उत्कट उदाहरण है।

भवभूति यत्र-तत्र हास्य रस का भी चित्र बड़ी ही सफलता के साथ तुत किया है। श्रीराम के अश्वमेधीय अश्व को देखकर आदिकवि मीकि के आश्रम के विद्यार्थी लव उस अश्व-परिचय हास्य रस के चित्रण

द्वारा दिया है कि—"पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं वञ्च धुनोत्य जस्रम्" इत्या
श्लोक में हास्य की कमनीय छवि दर्शकों के सदृश प्रस्तुत की हैं।

भवभूति का छन्द कौशल भी सराहनीय हैं। वे यथाप्रसंग छन्द
अवलम्बन लेकर वर्णन प्रस्तुत किया है। सरल और मार्मिक वर्णन को प्रस्तु
करने के लिये अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है और शृंगार एवं कोमल वर्ण
करने के लिये इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा, और मालिनी शब्दों का अवलम्
लिया हैं। रौद्र, वीभत्स आदि के वर्णन के लिये दीर्घदेही शार्दूल
विक्रीडित छन्दों का आधार लिया है। यही कारण है कि उन्होंने सर्वाभि
करुण रस चित्रण में शिखरिणी छन्द का अधिक प्रयोग किया गया है
आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी कृति 'सुवृत्त-तिलक' में भवभूति द्वारा प्रयु
'शिखरिणी' छन्द की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि—

"भवभूतेः शिखरिणी निर्मलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥"

रसानुभूति भवभूति की कृति में व्यंग्य का भी पुट प्राप्त होता हैं। य
भवभूति की रचना-शैली वाच्य-प्रधान है तथापि व्यंग्य के पुट भी यहाँ
प्राप्य हैं। भवभूति ने भाव के प्रदर्शन के लिये विस्तार के साथ शब्द
का आश्रय प्राप्त किया है। इस प्रकार के वर्णन से स्पष्ट लक्षित हो जा
कि भवभूति ने अपनी पावन कृतियों में वैदर्भी और गौड़ी रीति माध्य
सजीवता उपस्थित कर दी हैं। साथ ही विविध छन्दों, अलंकारों एवं वि
रसों की सफल अभिव्यक्ति के द्वारा उनका प्रकाण्ड-वै-दुष्टा स्वतः अभि
हो रहा। भापा भी आपकी वशवर्तिनी होकर उनके विषयानुकूल शब्द
चित्रों को आक सा दिया है। वास्तव में रसानुभूति भवभूति का शब्द-वि
पर अद्वितीय अधिकार था अतः आपकी कवित्व शक्ति वाच्य-प्रधान
बशवर्तिनी भाषा विपयानुकूला है।

प्रश्न ५—'उत्तररामचरित' में वर्णित वीथी अंक की विशेषता
संक्षिप्त विवेचन कीजिये।

अथवा

चित्र दर्शनांक से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—महाकवि भवभूति के नाटक (उत्तररामचरित) की क

स्रोत 'रामायण' के उत्तर काण्ड से ग्रहित है। इस नाटक की रचना का उद्देश्य यह है कि जो जनता में फैले हुए लोकापवाद को मिथ्या सिद्ध करना और देवर्षि और ब्रह्मर्षियों आदि सिद्धों के वचनों से प्रमाणित कराना कि सीता शुद्ध हो और जिससे राम उसे ग्रहण कर लें। भवभूति ने अपने कथानक को नाटकीय बनाने और अपने प्रयोजन की सिद्धि हेतु मूल कथा को पर्याप्त परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत किया है। सीता का निर्वासन इस नाटक का बीज है जो विस्तीर्ण होकर, बढ़कर रूपक का पूर्णाकार धारण कर लेता है। इस घटना को स्वाभाविक एवं नाटकीय ढंग से प्रदर्शित करने के लिये महाकवि ने 'चित्र-दर्शन' नामक युक्ति से काम लिया है। यह कवि की कल्पना की चमत्कृति है। यह युक्ति अत्यन्त मनोवैज्ञानिक कारणों से संयुक्त है। सीता का निर्वासन, गुरुजन तथा गर्भावस्था से शिथिल सीता का विरोध बाधक न हो इसके लिये एक ओर तो उसने प्रजावत्सल राम के गुरुजनों को ऋष्यश्रृंग के बारह वर्षीय यज्ञ में भाग लेने भेज दिया और दूसरी ओर चित्रवीथिका में प्रवेश कराके सीता द्वारा ही दण्डाकारण्य को देखने की दोहदेच्छा (गर्भवती की इच्छा) अभिव्यक्त कराई। इस घटना को स्वाभाविकता प्रदान कराने के लिये चित्र-दर्शन की योजना कवि ने प्रथम अङ्क में प्रस्तुत की है और प्रथम अङ्क का नामकरण 'चित्र-दर्शनाङ्क' किया है। इसी में चित्र-दर्शन के बाद राम-लक्ष्मण को सीता को तपोवन का दर्शन कराने और गंगा स्नान के लिये ले जाने की आज्ञा दे देते हैं। इस घटना में स्वाभाविकता लाने के लिये सीता और राम के आदर्श दाम्पत्य प्रेम की रक्षा हेतु 'चित्र-दर्शन' भवभूति ने योजना बनाकर प्रथम अंक का प्रणयन किया और चित्र-दर्शन की घटना का चित्रण होने के कारण प्रथम अंक का नाम 'चित्रांक-दर्शन रखा है।

डॉ० गंगासागर राय ने 'चित्र-दर्शन' नामक प्रथम अंक की वस्तु-योजना का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि—चित्र-दर्शन नाटकीय वस्तु-योजना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे अग्रलिखित तथ्यों का संकेत मिलता है—

(१) लक्ष्मण द्वारा सीता की अग्नि शुद्धि तक चित्र बनने की सूचना दी

जाती हैं। इससे सीता के त्याग में सहायता मिलती हैं। साथ ही सीता-विषयक लोपापवाद का स्मरण भी होता है।

(२) चित्र-दर्शन से सीता के हृदय में पञ्चवटी को पुनः देखने की इच्छा जाग्रत हो उठती है। अतः राम को आसानी से त्याग का अवसर मिल जाता हैं। इस प्रकार यह दृश्य सीता-परित्याग के कारण और अवसर दोनों को उपस्थित कर देता है।

(३) सीता के पुत्र लव और कुश में राम द्वारा जृम्भकास्त्र के प्रादुर्भाव का संकेत इसी दृश्य में मिलता है। इससे नाटक के अन्त में लव-कुश को पहचानने में सहायता मिलती है।

(४) इसी दृश्य में सीता परित्याग के समय राम और पृथ्वी और गंगा से सीता की रक्षा की प्रार्थना करते हैं। इसी प्रार्थना के फलस्वरूप देवियों द्वारा सीता की रक्षा और मिलन प्रसंग में इसका संकेत दिया जाता है।

(महाकवि भवभूति पृ० ८६)

इस प्रकार महाकवि भवभूति ने सीता के मनोरंजन के लिये ही 'चित्र-दर्शनांक' की रचना नहीं की है, अपितु जनकसुता के निर्वासन और पुनः प्राप्ति करने की घटना का व्यापक निरूपण 'बीज' रूप में किया। डॉ० गंगा सागर राय ने 'चित्र-दर्शन' की मनोवैज्ञानिकता एवं भवभूति की सूक्ष्मदर्शिता के चार प्रयोजनों का संकेत करते हुए कहा है कि—

(१) चित्र-दर्शन से राम और सीता को भूतकालीन जीवन की घटना याद आ जाती है। पंचवटी राम के जीवन में उनके दाम्पत्य सुख-भोग की स्थली होने के कारण सुखमय जीवन की साथिन बन गई थी।

(२) चित्र-दर्शन के अवसर पर राम के हृदय में पंचवटी के प्रति अपार प्रेम व्यक्त होता है। यही कारण है कि राम शम्बूक नामक शूद्र को हननार्थ वहाँ जाकर पंचवटी के परिचित स्थानों को देखकर इतना अधिक रोते हैं कि प्रस्तर खण्ड भी रोते हुये दिखाई पड़ते हैं। यह चित्रण भवभूति की मनोवैज्ञानिकता का उत्कट उदाहरण है।

(३) 'चित्र-दर्शन' प्रसंग में राम और सीता के प्रगाढ़-प्रेम का परिचय प्राप्त होता है। इस दृश्य से सीता के प्रति राम का अविच्छिन्न प्रेम-दर्शन पुन

मिलन की भूमिका है। ये चित्र वियोगी राम के मनोविनोद और आश्वासन के साधन माने जा सकते हैं।

(४) भवभूति की उत्कृष्ट कृति उत्तररामचरित्र के प्रथम अंक के प्रारम्भ में चित्र-दर्शन की घटना अत्यन्त गौरवपूर्ण है, सीता का वियोग प्रथम अंक से ही हो जाता है। इसी वियोग की घटना को नाटक के अन्त में जोड़कर पुनर्मिलन की घटना का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार उपरिलिखित विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाकवि भवभूति ने जनकसुता के त्याग की सूचना को ध्वनित करने के लिये और एक आदर्श-दाम्पत्य प्रेम की रक्षार्थ ही चित्र-दर्शन की सफल योजना की कल्पना करके अद्वितीय नाटचकौशल का परिचय प्रस्तुत किया है। इस रस युक्त और तार्किक घटना की योजना करके सीता का त्यागोत्पन्न विवादास्पद दाम्पत्य प्रेम के विरुद्ध भावना का वड़ा याथार्थ्य चित्रण प्रस्तुत किया है। जिससे जनकसुता के पुनः मिलन की आशा का सूत्रपात सामाजिकों के चित्त में प्रादुर्भूत हो जाता है। चित्र-दर्शन के प्रसंग में वर्णित कल्पनाओं से भवभूति के भाव पक्ष की स्पष्टता का परिचायक हो जाता है। इसी चित्र-दर्शन के समय राम के चित्त की अन्तःस्थिति का स्पष्ट चित्र देखने को मिलता है। राम के सामने एक ओर पूर्वजों द्वारा रक्षित प्रजा-अनुरञ्जकत्व तथा राजधर्म, का निर्वाह और दूसरी ओर सीता के साथ विशुद्ध प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम है। दोनों परस्पर विपरीत अन्तःदशाओं का समाधान कैसे किया जाये। यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्मुख विषम समस्या सुरसा के समान आनन खोल कर खड़ी है। इसके समाधान में राम के चित्त की गाम्भीर्य, राज्य धर्म के निर्वाह की महान्निष्ठा, कथावस्तु को और अधिक शक्तिशाली बना देती है।

इस प्रकार रसानुभूति के द्वारा वर्णित प्रथम अंक के अन्तर्गत चित्र दर्शनांक की योजना नाटकीय कथानक की दृष्टि से, चरित्र-चित्रण की आदर्शता की दृष्टि से और भावपक्ष की दृष्टि से—तीनों ही प्रकार के महत्वपूर्ण अंक है।

प्रश्न ६—महाकवि भवभूति द्वारा विरचित उत्तररामचरित के आधार पर राम और सीता के प्रणय-चित्र एवं दाम्पत्य जीवन-चरित का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

४०

उत्तर—महाकवि भवभूति ने आदर्श दाम्पत्य-प्रेम के चित्रण में अत्यन्त सफल हैं। इसका आधार रामायण और महाभारत ही है। भवभूति के चित्त में नारी समाज के प्रति आदर की भावना से पूर्ण हैं। मालतीमाधव के प्रारम्भ में भी उन्मुक्त प्रणय का वर्णन किया है। उत्तररामचरित में भवंभूति ने अपने इस लक्ष्य को परिपूर्णता प्राप्त की है। उत्तररामचरित के प्रथमांक से ही हमें दाम्पत्य-प्रणय के मधुर चित्र मिलते हैं यह प्रणय सौभाग्य से प्राप्त होता है तथा सुख-दुःख सभी परिस्थितियों में एक समान बना रहता है। भवभूति की दृष्टि में स्त्री और पुरुष के जीवन का प्रथमोद्देश्य वैवाहिक सम्वन्ध है। यह वैवाहिक सम्वन्ध ही जीवन में आनन्द की स्थापना करता है और लोक कल्याण का कारण बनता है तथा अवस्था परिणति के साथ परिवर्तित नहीं होता और हृदय को अपूर्व शान्ति प्रदायक होता है—

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥

(प्रथमाङ्क का ३९ वां श्लोक)।

भवभूति का दाम्पत्य-प्रणय एवं भव्य है, इसी आदर्श से दाम्पत्य का बीज का आरोपण 'मालतीमाधव' में किया है, परन्तु वह दाम्पत्य-प्रणय 'उत्तर रामचरित' में पल्लवित दृष्टिगोचर होता है। भवभूति द्वारा प्रस्तुत किया हुआ चित्रण धार्मिक और व्यावहारिक रूपों का वड़ा ही सजगता से चित्र बन पड़ा है। भवभूति ने बड़ी ही शक्तिशाली एवं संयम के साथ मालतीमाधव में वर्णित प्रेम-चित्रण मिलता है और उत्तररामचरित में आदर्श नृपति पुरुषोत्तम राम के दाम्पत्य वर्णन में आदर्शता का किस प्रकार विस्मरण कर सकता था। महर्षि वाल्मीकि ने स्वकृति रामायण में सीता और राम के जिस पावन रूप का वर्णन प्रस्तुत किया है उसको अपनी आधारशिला मानकर भवभूति ने राम और सीता के दाम्पत्य जीवन का आदर्शरूप वर्णित किया है।

भवभूति करुण रस सम्राट हैं यथा सूरदास वात्सल्य सम्राट हैं। आपने अपने नायकों शृंगार, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स और हास्य रसों का बड़े

साफल्य के साथ वर्णन प्रस्तुत किया है, परन्तु आपने अपनी तीनों कृतियों में तीन रसों का प्रभावकारी वर्णन प्रस्तुत किया है वे क्रमशः इस प्रकार से हैं— (१) शृङ्गार, (२) वीर और (३) करुण। मालतीमाधव में जो शृङ्गार की अद्वितीय छटा प्रस्तुत की है वह अद्वितीय है। साथ ही महावीरचरित में वीर रस का कमनीय चित्रण किया है तथा करुण रस साक्षात् मूर्तिमान् होकर उत्तररामचरित में उतर आया है। उसको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो करुण रस को भी करुणा उत्पन्न कर सकती है। यद्यपि भवभूति ने शृङ्गार और वीर रस की विचित्र चमत्कृति प्रस्तुत की है, परन्तु आपका मन करुण रस में अत्यधिक रमण करता हुआ सा प्रतीत होता है। यही कारण है कि कालिदास के समान कलापक्ष और भावपक्ष में भवभूति ही उनके सदृश प्रतीत होते हैं अपर कवि नहीं आता। यदि हम कालिदास को शृङ्गार का सम्राट या संर्वोत्कृष्ट कवि कहें तो भवभूति को करुण रस का सर्वोत्कृष्ट महाकवि कहना अनुचित नहीं होगा।

इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि भवभूति के शृङ्गार और वीर रस के वर्णन सफल नहीं बन पड़े अपितु आपने शृंगार के दोनों पक्षों का (संयोग और वियोग) स्पष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है। शृङ्गार आपका मर्यादा और आदर्श की नींव पर बना हुआ प्रासादवत् है। इसी कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति आदर्श-प्रणय चित्रण के सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं। इसके उदाहरण के रूप में मालतीमाधव और उत्तररामचरित के आदर्श-प्रणय को उद्धृत कर सकते हैं। वह चित्रण की कुशलता भी अद्वितीय है। इसमें कोई भी सन्देहास्पद बात नहीं है। उत्तररामचरित के प्रथमांक में चित्रित 'वीथी' दर्शन में चित्रकूट के चित्रों को देखकर राम के हृदय में पुरानी स्मृतियाँ पुनः नवीन रूप को धारण कर लेती हैं और वे कहने भी लगते हैं कि यह वही स्थान हैं जहाँ पर हम दोनों पर्णकुटी में अन्योन्य गण्डस्थल को सटाकर, एक हाथ से परस्पर प्रगाढ़ालिंगन में रत होकर रात भर क्रम रहित बिना कुछ न कुछ बातें करते हुये रातें व्यतीत हो जाती थीं और यह भी ज्ञात नहीं होता था कि कब रात्रि हुई और कब बीत गई। परन्तु प्रेमालाप का अन्त भी नहीं होता था यथा अधोलिखित श्लोक से अभिव्यक्त हो रहा है—

"किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिम्भव्यापृतैकैकदोष्णो,
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥ १.२७

भवभूति द्वारा विरचित संयोग शृङ्गार का इतना मर्यादा युक्त और हृदय-ग्राही वर्णन है कि उसको इस चर्म जिह्वा से कहना असम्भव है। उसका केवल अनुमान मात्र ही किया जा सकता है। आगे चलकर करुण रससिद्ध कवि भवभूति ने उत्तररामचरित में मर्यादा पुरुषोत्तम राम और जनक तनया के विरह के जो कारुणिक चित्रण प्रस्तुत किये हैं वह संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। उस प्रजानुरञ्जक राम की विरहातुरावस्था का कितना सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। अधोलिखित श्लोक को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो राम हमारे सामने ही विरहातुर अवस्था में घूम रहे हों—

"दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तन्मन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्,
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥ ३-३१

राम सीता के विरह में आतुर होकर कहते हैं कि—"मेरा हृदय वियोग (सीता के) में फटा जा रहा है परन्तु दो टुकड़ों में नहीं होता, विरहाकुल शरीर मूर्छित हो रहा है परन्तु चैतन्य शरीर का त्याग नहीं करता, विरहाग्नि शरीर में प्रज्वलित हो रही है परन्तु भस्मसाद नहीं करती, निर्दयी विधाता मर्मस्थलों पर प्रहार तो करता है। परन्तु प्राणों का अन्त नहीं कर रहा है।" भवभूति का यह चित्र मर्मस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक है। ऐसा विरह का अन्यत्र चित्र अप्राप्य है।

भवभूति का शृङ्गार भी पवित्र प्रणय पर आधारित है। इसमें यौवनोत्पन्न मदान्धता, उद्दाम कामुकता और रोमाञ्चा की विलासिता का वर्णन नहीं किया गया है। अपितु उसमें भी स्वाभाविक सरस और मर्यादा तथा आदर्श रति का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः भवभूति का प्रणय आदर्श का अवलम्बन लेकर वृद्धि को प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि आपने मालती-माधव के उन्मुक्त और उन्मादक रति-चित्र का आरम्भ करके भी उसका अव-

सान आदर्श की भूमि में ही आकर किया है। आदर्श दाम्पत्य को मालती माधव में इस प्रकार परिभाषित किया है—

'प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वेकामाः शेवधिर्जीवितवा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा मित्यन्योन्य वत्सयोर्ज्ञातमस्ति॥

भवभूति आदर्श दाम्पत्य-प्रेम के चित्रण में अत्यन्त सफल हुये हैं। मालती-माधव में भवभूति ने उन्मुक्त रति के प्रकरण का आरम्भ किया है परन्तु उसका उद्देश्य आदर्श, पति-पत्नि के दाम्पत्य का वर्णन करना है। उत्तररामचरित में भवभूति ने अपने इस उद्देश्य में पूर्णता प्राप्त की है। यह प्रणय उत्तररामचरित के प्रथमांक से ही हमें मधुर रूप से दृष्टिगोचर होतां हैं। यह प्रणय भी बड़े सौभाग्य से ही मिलता है तथा दुःख-सुख सभी परिस्थितियों में एकसा बना रहता है तथा अवस्था परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होता और हृदय को अपूर्व शान्ति व सुख प्रदायक है—

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्प्रेमहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥" १-३९

इसका सारांश यह है कि विशुद्ध दाम्पत्य जीवन का प्रणय प्रत्येक अवस्था में एक समान बना रहता है। उसमें चित्त को अवर्णनीय सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। परिस्थिति विशेष का विशुद्ध दाम्पत्य प्रणय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है वह वृद्धावस्था में कम नहीं होता है। प्रणय सूत्र बन्धन के बाद शनैः शनैः कुछ समय वाद संकोच आदि दुराव की भावना दूर हो जाती हैं और उस प्रणय में और भी अधिक प्रगाढ़ता एवं परिपक्वता आ जाती है। ऐसे कल्याणकारी पावन प्रेम की प्राप्ति वड़े ही सौभाग्य से ही होती है। इससे स्पष्ट है कि भवभूति ने आदर्श दाम्पत्य प्रणय का जो चित्र सामने रखा है वह वास्तव में अनुकरणीय एवं सराहनीय है।

अत्यधिक सौभाग्य से उपलब्ध प्रणय-प्रेम की कल्याणमय परिणति संतान की उपलब्धि माना है। वह सन्तान ही पति और पत्नि के रत्यार्द्र हृदय को एक सूत्र में बाँधने वाली आनन्दमयी ग्रन्थी है यथा भवभूति द्वारा कथित है—

"अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति इति पठ्यते ।।" ३-१७

रसानुभूति भवभूति का यह आदर्श प्रणय-चित्रण भारतीय संस्कृत एवं उसके आदर्शों से प्राणित है। इसीलिये यह प्रणय-चित्रण निस्सन्देह रूप से सभी के सामने स्पष्ट रूप से पढ़ सकते हैं। माता-पिता एवं गुरुजनों, पत्नी, पुत्र और मित्रों के सामने सभ्यता के साथ चित्रण एवं अभिनय कर सकते हैं; क्योंकि भवभूति के इस प्रणय-चित्रण में मर्यादा, पावन, संयम और लोकानुरञ्जन की भावना के सर्वोच्च आदर्श का वर्णन किया गया है।

उत्तररामचरित में वन के उन पुनः नवोदित मर्मों को देखकर राम मूर्छित हो जाते हैं, परन्तु सीता के स्पर्श को पाकर चेतनावस्था में आ जाते हैं और राम सीता के स्पर्श लाभ से लाभान्वित हुये, सीता को संजीवनी औषधि के नाम से अलंकृत करते हैं—

आश्च्योतनं नु हरिचन्दन पल्लवानां ।
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकं ।।"
"आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयम् ।
सञ्जीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसिक्तः ।। ३-११

रससिद्ध कवि ने आदर्श दाम्पत्य प्रणय को वास्तविक प्रेम माना है, उसके वाह्य कारण अपेक्षित नहीं होते हैं, अपितु अन्योन्य प्रणय का कोई आन्तरिक कारण होता है यथा जलाशय में स्थित पुण्डरीक आकाश स्थित सूर्य का अवलोकन करके विकसित होता है तथा चन्द्र-दर्शन से चन्द्रमणि जल स्रोतवत् स्रावित होने लगती है। इस उपमा में कितना रमणीय चित्र अधोलिखित श्लोक में भवभूति ने किया है—

"व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतंगस्योदिते पुण्डरीकम्,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ।।" ६-१२

भवभूति का पति-पत्नी का प्रणय वर्णन विशुद्ध एवं आदर्शता से अभिषिक्त है। यौवन की उत्कट दशा का चित्रण प्राप्त होने पर भी कामेच्छा का अभाव दृष्टिगोचर होता है। सच्चे हृदय की प्रेमदशा का सार हृदय ही जानता है। विशुद्ध रति के प्रभाव को विश्व की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। असह्य सांसारिक कष्टप्रिय की सानिध्यतामात्र से पराभूत अर्थात्

विशाल हो जाता है। भवभूति द्वारा वर्णित प्रणय दुग्ध के सादृश धवल और जान्हवीजल के समान पावन होता है यथा भवभूति ने स्वतः ही कहा है—

"स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते।
धवल मधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥"

अतः भवभूति ने जिस पति-पत्नी के प्रणय का चित्र खींचा है, वह चित्र आदर्श, विशुद्ध एक उत्कट प्रेम का है। यही कारण है कि, पति-पत्नी के पावन-प्रणय का चित्र प्रस्तुत करने की भावना से रसानुभूति ने विदूषक की कल्पना नहीं की है। प्रायः नाटकों में देखा जाता है कि—नाटक प्रणेताओं ने विदूषक की सहायता से नायक से अपरानायिका का सम्मिलन कराया है। पति-पत्नी के शुद्ध चित्र में पराई नायिका के चित्रण का अवसर ही नहीं रहता है तो फिर विदूषक की सहायता की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है। अतः भवभूति द्वारा उदात्त एवं पावन दाम्पत्य प्रेम का चित्रण वर्णित करते हुए विदूषक की आवश्यकता का अभाव के अनुभव करके ही विदूषक की योजना नहीं की।

रसानुभूति भवभूति ने जैसा रमणीय चित्रण दाम्पत्य-प्रणय का प्रस्तुत किया है, उतना सुन्दर वर्णन कोई अन्य कवि नहीं कर सकता, यह कहना अनुचित न होगा। कवि कुलगुरु कालिदास के द्वारा विरचित अभिज्ञान शाकुन्तल में शृङ्गार की विलासिता का चित्रण है। हाँ, यदि मेघदूत के दाम्पत्य-प्रेम की तुलना भवभूति के दाम्पत्य-प्रणय के उदाहरणस्वरूप 'उत्तर-रामचरित' से की जाये तो वह इसके समता में आता है अपर कवि नहीं। इसीलिगे यह निकला कि—संस्कृत साहित्य के दाम्पत्य-प्रणय के वर्णन करने वाले कवियों के भवभूति मूर्धन्य हैं, न केवल भारत के ही, अपितु विश्व साहित्य में भवभूति का विशुद्ध दाम्पत्य-प्रणय का वर्णन अद्वितीय और सर्वोत्कृष्ट है। ●

प्रश्न ७—भवभूति—विरचित "उत्तररामचरित" का सप्तमअङ्क कवि द्वारा नवीन एवं उत्कृष्ट कल्पना है ? इसके महत्व पर अपने विचार अभिव्यक्ति कीजिये।

उत्तर—भवभूति एक सफल और कुशल नाटककार हैं। अपने उत्तर-

रामचरित के सप्तम् अङ्क के अन्दर 'गर्भाङ्क' की नूतन योजना करके एक अनोखी चमत्कृती का अविर्भाव किया है। इसके सातवें अङ्क में अप्सराएँ आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित राम कथा का अभिनय करती हैं। इस अभिनय के दर्शनाभिलापी प्रजानुरंजक एवं पुरुषोत्तम राम तथा आदर्श शासक श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, अयोध्यावासी तथा तीनों लोकों के सम्भ्रान्त नागरिक थे। राम की आज्ञा से दर्शक अयोध्यावासियों के बैठकर नाटक देखने की उचित व्यवस्था की गई। इस गर्भाङ्क के अभिनय को देखकर तीनों लोकों के आगन्तुकों, अयोध्यावासियों के और सर्वसाधारण के निर्दुष्ट होने का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। सर्वजन इसको देखकर विश्वस्त और आश्वस्त हो जाते हैं कि जनक तनुजा वास्तव में पावन मूर्ति है, उसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं है। अयोध्यावासियों के सन्देह का निवारण हुआ तथा यह भी ज्ञात हुआ कि हमारे राजा ने सीता के साथ अन्याय किया। जो पावन सीता को इस मिथ्या के श्रवणमात्र पर ही विरह-जन्य कष्टों को भोगने के लिये वाध्य किया। इस 'गर्भाङ्क' से एक परम्परा का भी निर्वाह होता है, वह इस प्रकार से है—काव्यान्त सुखमय होना। इसी अङ्क में सीता को निर्दुष्ट घोपित करके अन्त में पति-पत्नी और लव-कुश तथा प्रजा के साथ सुखद मिलन भी कवि ने प्रस्तुत किया है। यह सब का सुखद मिलन भवभूति के नाटकीय-कौशल की रमणीयता है, वह दर्शनीय है कि गर्भाङ्क द्वारा एक बार पुनः सीता के दुःखजन्य राम के शोक का उत्कट रूप प्रस्तुत करके और अन्त में लव-कुश का परिचय करवा कर सबका सुखद मिलन करा दिया है जैसा अधोलिखित श्लोक से ही स्पष्ट हो रहा है—

"नियोजय यथा धर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्'
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।" (७-१९)

वास्तविकता यह है कि भवभूति ने गर्भाङ्क की नवीन योजना प्रस्तुत कर के नाट्यकला की चरमोन्नति को वर्णित को किया है, जिसकी तुलना हम भारती कोई भी कवि नहीं कर सकता। कवि की नाटकीयता सम्बन्धी विवेकशीलता एवं प्रतिभाशक्ति दोनों ही अद्वितीय हैं। कवि निकाली गई सीता के अपवाद से कलुपित राम के चित्त-प्रक्षालन एवं प्रायश्चित पंचवटी में द्रवित तथा अनेक

वार मूर्छित कर डाला है। यही नहीं भवभूति ने भारतीय नाटकीय परम्परा के अनुरूप नाटक की समाप्ति सुखान्त करते हुये राम सीता का पुनर्मिलन राम के साथ उस समय प्रदर्शित किया है। जिस समय पवित्रता का परम पावनतम चित्र सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। रामायण में सीता की पावनता का चित्रण सर्वसाधारण से नहीं कराया गया है। सीता और राम को भवभूति समान विरह तप्त सीता का आक्रोश और राम का प्रायश्चित भी नहीं चित्रण किया है। रामायण की इस गलती को पूर्ण करने के लिये ही उत्तररामचरित की रचना की है और गर्भाङ्क का वर्णन भवभूति की एक सर्वोत्कृष्ट नवीन कल्पना है। वस्तुतः जिस जानकी का परित्याग जनभावना एवं जनसन्देह के आधार पर किया गया था, उस सीता का तव तक ग्रहण करना एक आदर्श राजा के लिये उचित प्रतीत नहीं होता है जव तक वह प्रजाजनों से सीता-ग्रहण की आज्ञा न प्राप्त कर ले। इस उदार भावना एवं व्यावहारिकता का उत्कृष्ट रूप ध्यान में रखकर सीता का पुनर्ग्रहण कराके पूर्व प्रजागण के सन्देह का निराकरण अनिवार्य मानकर भवभूति ने इस 'गर्भाङ्क' की योजना करके सीता की पवित्रता त्रय लोकों के प्रसिद्ध एवं संभ्रांत व्यक्तियों के सामने नाट्य के साथ प्रस्तुत की है। यह भवभूति की बुद्धि की चरमोन्नति का रूप है आदर्श पुरुषोत्तम राम सीता का ग्रहण जव तक नहीं करते जव तक कि प्रजाजन ग्रहण की अनुमति प्रदान नहीं करते। इस पुनः ग्रहण में केवल प्रजा की अनुमति इतनी प्रभावकर नहीं थी अपितु गुरु पत्नी त्रैलोक्य पवित्र चरित अरुन्धती का आदेश नहीं मिलता। इस प्रकार आदर्श राम सीता का ग्रहण प्रजानुमति और अरुन्धती की आज्ञा से ही सम्भव हो सका। अन्त में प्रजा का मत प्राप्त करके राम का सुखद पुनर्मिलन हुआ। यह पुनर्मिलन, राम की आदर्शता की रक्षा, सीता की पावनता की अभिव्यक्ति और प्रजागण पर अटूट निष्ठा का अनोखा एवं मनोहर सहृदय का आह्लादक चित्र गर्भाङ्क के द्वारा भवभूति ने अपने अनोखी नाट्यकला का परिचय प्राप्त होता है।

पण्डित वलदेव प्रसाद उपाध्याय ने उत्तररामचरित के सातवें अङ्क के अन्दर वर्णित 'गर्भाङ्क' के समय एवं उत्कृष्टता की अभिव्यक्ति करते हुये कहा है कि—"जो ऐतिहासिक वृत के साथ-साथ शोभन सुखान्तरूप प्रस्तुत

करती है और अद्भुत रस के योग से दर्शकों के चित्त में कौतुहल वृति का उदय करती है। इन घटनाओं का संविधान अन्विति से समवेत है।"

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भावुक एवं अद्वितीय-धी-सम्पन्न महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में करुणा को जो अविरल धारा प्रवाहित करने के साथ ही साथ सातवें अङ्क में 'गर्भाङ्क' की योजना नाटच-कला में सुवर्ण में सुगन्ध का सा मिलन जान पड़ता है। इस गर्भाङ्क देखने के आस्वाद्यमान अद्भुत रस की अभिव्यक्ति भवभूति की अनुपमेय एवं नूतन कल्पना का सुन्दर उदाहरण है। उत्तररामचरित के सातवें अंक में प्रयुक्त गर्भाङ्क का जो महत्व है, इसका वर्णन वाणी और लेखनी से अगोचर है। केवल नाटच-कला के विशारद सहृदय समीक्षक ही अनुमान लगाता है कि वास्तविक अनुभूति अभिव्यक्ति से परे की वस्तु है। अतः निस्संशय कहा जा सकता है कि जिन वैशिष्टों में गर्भाङ्क की अभिव्यक्ति का विशेष महत्त्व है। अतः कुछ साहित्य पर्यालोचकों के द्वारा भवभूति के नाटच-कला को कवि कुलगुरु कालिदास से भी उत्कृष्ट मानने का प्रयत्न करते हुये, उनके मुखारविन्द से स्वतः ही यह उक्ति निकल पड़ी—
"उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

कालिदास तो कालिदास के ही सदृश है अन्य नहीं परन्तु भवभूति दाम्पित्य जीवन के आदर्श प्रणय के विरह की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति, करुण रस का साफल्य चित्रण छायांक और गर्भाङ्क योजना करने में असाधारण कवि एवं नाटककार रसानुभूति भवभूति हैं, जिनकी तुलना में विश्व का कोई भी कवि एवं नाटककार नहीं आता। अतः आपकी विश्व में विख्याति फैली हुई हैं। ●

प्रश्न ८—'उत्तररामचरित' नायक के चरित्र के विषय में आप क्या जानते हो? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

क्या राम प्रजानुरञ्जक थे? इस कथन की व्याख्या प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—रसानुभूति भवभूति ने उत्तररामचरित में परमब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम राम का चरित ही वर्णित है। वह प्रजावत्सल, शरणागत वत्सल श्री राम में नायकोचित हैं। जब रामचन्द्र जी लंकेश दशासन पर विजय प्राप्त करके अयोध्या में आकर शासन-कार्य को सम्भालते हैं। बस यही नहीं आगे के चरित्र का नाटकीय ढंग से चित्रण किया है। भवभूति ने शरण में

आये हुये और साक्षात् ईश्वर मानते हैं । इसीलिये भवभूति शम्बूक से कहलवाया है कि—

"अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यः ।"

भवभूति ने राम को आदर्श एवं मर्यादा पुरुषोत्तम रूप में प्रदर्शित किया है । वे एक सच्चे आदर्श-भूपाल हैं, प्रजा के अनुरंजक है । वे तो इतने प्रजा-वत्सल हैं कि—अपने सुख-दुःख की ओर तो क्या जानकी तक को प्रजा के अनुरंजन के लिये त्याग कर सकते हैं—

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

मर्यादापालक, राम ने इस घोषणा के अनुरूप ही जन-भावना की रक्षा के कारण प्रिय एवं पतिव्रत आदि सर्वश्रेष्ठ गुणयुक्ता, कठोरगर्भा सीता का इतने निर्मम ढंग से परित्याग कर दिया । यद्यपि रामचन्द्र जी स्वयं सीता के विषय में आश्वस्त थे परन्तु ऐसा समझते थे कि सीता अग्नि और तर्थोदकवत् पावन हैं, इसकी पवित्रता के लिये कोई अन्य वस्तु समर्थ नहीं है । परन्तु जनापवाद से अत्यन्त भयभीत होकर और प्रजावत्सल का गौरव मानकर अचानक सीता का परित्याग करके प्रजानुरंजन के कठिन नियमों का पालन किया इस विषय में स्वयं राम ने ही कहा है कि—

"सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ।" १/४१

दाम्पत्य-प्रणय के आदर्श श्री राम को भवभूति ने दाम्पत्य-प्रणय के आदर्श को प्रस्तुत करने का माध्यम बताया है । वे सीता को गाढ़ स्नेह करते थे परन्तु लोकानुरंजन के कारण उस स्थिति में उस अग्नि और तीर्थोदक की भाँति जानकी का परित्याग कर दिया । उस त्याग के पश्चात् राम अत्यन्त दुःखी हुये । उन्हीं भावों को कवि ने राम के मुख से कहलवाया है—

"हाँ देवी । देव यजनसम्भवे ? हा स्वजन्मानुग्रह पवित्रित वसुधरे ? हा मुनिजन नन्दिनि ? हा पावक वसिष्ठारुन्धती प्रशस्तशीलशालिनि ? हा रामभय जीविते ? हा महारण्यवासप्रिय सखि ? हा तातप्रिये ? हा स्तोकवादिनि ? कथमेवं विधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?"

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥ १/४३

राम का हृदय जानकी के प्रति बड़ा उदार एवं आदर की भावनाओं से तरंगित हो रहा था। परन्तु वह सीता के त्याग की कल्पना से ही कांप उठता था। परन्तु वे सीता की पवित्रता की घोषणा करते हुये कहते हैं कि तुम विना संसार ही अपवित्र है और तुम को प्राप्त करके भी संसार धन्य है परन्तु तुम ही अनाथ होकर कैसे आपत्तियाँ सहन करोगे। वह स्वयं राम तुम्हारे परित्याग करने मात्र को ही सोचने से महत दुःखी हो रहा हूँ। परन्तु ऐसे श्री राम ने जब सीता का परित्याग करके, पञ्चवटी में सीता से सम्बन्धित स्थानों को देखकर जो विलाप किया है। उस कारुण्य धारा में पथिक भी अपने मन को द्रवित पाता है। यही नहीं अपितु उस राम के कारुण्य का श्रवण करके तो प्रस्तर खण्ड भी रो पड़ते हैं। राम के दाम्पत्य जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुये कहा है कि—इतना आदर्शमय दाम्पत्य प्रणय बड़े ही सौभाग्य से मिलता है जो प्रणय सुख-दुःख सभी अवस्थाओं में एक-सा रहता है और किसी विशिष्ट अवस्था में परिवर्तित नहीं होता। सदा चित्त को अपूर्व सुख और शान्ति का प्रदायक होता है—यथा—अधोद्धृत श्लोक में वर्णित है—

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥ १--३९

श्री राम का दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त पावन एवं आदर्शमय है। वे सीता के विरहोत्पन्न दुःख से अत्यन्त कृशकाय, मलिन छवि वाले हो जाते हैं कि—राम को पहिचानना कि यह राम है कठिन हो गया है। प्रजानुरञ्जक, सीता के विरह में क्षीण कलेवर श्री राम दुखार्त्त होकर कहते हैं कि—हे देवि ! सीता के विरह में मेरा हृदय खण्ड-खण्ड हो रहा है और समय संसार शून्य सा प्रतीत हो रहा है। अजस्र वियोगाग्नि की ज्वाला से अन्तःकरण जल रहा है, विरह से व्याप्त हृदय अन्धकार में डूब रहा है और मुझे बार-बार मूर्छा आ रही है—मैं अभागी अब क्या करूं—यथा अधोद्धृत श्लोक में उसी विरह की कमनीय छटा दर्शनीय है—

"हा हा देवी स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥३/३८

इसका आशय यह है कि जनकसुता के प्रति राम का प्रगाढ़ प्रणय था। आप एक पत्नी व्रतधारी हैं। जब अश्वमेघ यज्ञ किया, तो अपरा स्त्री को पत्नी रूप में स्वीकार न करके, स्वर्णमयी प्रतिमा ही अपने वाम अंग रखते हैं। यही एक पत्नी व्रत नियम के पालक का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रजानुरञ्जक आदर्श शासक—श्री राम इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न थे, स्ववंश-परम्परा के प्रायः सभी गुण विद्यमान थे राम ने स्वयं इक्ष्वाकुवश की परम्परा की रक्षा के लिये सजग रहना सूचित करते हुये कहा है—

"इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समराधनीयः कृत्स्नो लोकः ।"

इसीलिए तो वे अपनी प्राण प्रिया के विरह जन्य अपार दुःख को भी सहन करते हुए प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलते। साथ शम्बूक शूद्र का वध करने के लिये वन में स्वयं जाते हैं तथा उद्दण्ड लवणासुर के हनन हेतु शत्रुघ्न को भेजते हैं। विरहोत्पन्न शोकाकुल अवस्था में कर्त्तव्यच्युत नहीं होते और आदर्श प्रेमी होते हुए भी कर्त्तव्य परायणयता के उत्कृष्ट रूप को अभिव्यक्त करती हुई वासन्ती कहती भी है कि—

"वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां हि चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हति ।" २/७

इस प्रकार भवभूति द्वारा विचरित उत्तररामचरित के आदर्श नायक राम का रूप चित्रित किया है। वह राम मर्यादा पालक हैं। इस नाटक में राम-चरित दिव्यभावात्मक और हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। महाकवि भवभूति ने राम के व्याज से करुण रस को स्पष्ट और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। उत्तर रामचरित में भवभूति ने राम चरित्र की अधोलिखित विशेपताओं का चित्रण किया है वे आदर्श शासक, आदर्श मित्र, आदर्श शत्रु, एवं आदर्श भावुक भी थे। वास्तविकता यह है कि राम का उदार चरित्र चित्रण करने में भवभूति ने अपना अद्वितीय बुद्धि-वैभव प्रदर्शित किया है। रसानुभूति ने स्वानु-

रूप राम का अभीष्ट चित्र प्रस्तुत करके सफल नाटककार के यश को प्रा
करके आपने नाम को उज्जवल किया है ।

प्रश्न ६—भवभूति के प्रकृति-चित्रण के विषय में आप क्या जानते हो स्पष्ट कीजिये ।

अथवा

भवभूति प्रकृति के कठोर पक्ष के प्रतिपादक हैं ? स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर—प्रकृति-प्रेम भवभूति के हृदय में अदम्य सागर की भाँति उद्वे
हो रहा था । वह सागर उत्तर राम चरित में अवाधित गति से तरंगित
रहा है । प्रकृति-चित्रों में भवभूति की व्यापक कल्पना शीलत्व एवं उ
अनुभव की प्रवीणता का स्पष्ट चित्र दृष्टिगोचर होता है । आपने प्रकृति
आलम्बन स्वरूप का चित्र बड़ी सफलता के साथ किया है । प्रकृति के को
एवं कठोर रूपों का बड़ा ही सफल एवं सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है । सम्भ
प्रकृति नटी के प्रचण्डतम घोर रूप का वर्णन करने का ज्ञान, आपके जन्म
विदर्भ के बनों से अर्जित किया होगा । दण्डकारण्य का प्रकृति-चित्रण,
देशीय वनों की कठोरता का परिचय प्रदान करते हैं यथा अधोलिखित श्लो
स्पष्ट होता है—

> "निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्वस्वनाः,
> स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः ।
> सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं,
> तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥

ऐसे भयावह दण्डकारण्य में कहीं तो सुनसान है और कहीं हिंस्र
की भयंकर घोर गर्जना सुनाई पड़ रही है । स्वेच्छा से सोए हुये गम्भीर
करने वाले भुजंगों के स्वासों से प्रज्वलित अग्नि जल रही है तो गर्त्त में
पानी चमक रहा है और तृषातुर गिरगिट अजगर के स्वेद कण का पान
रहा है । प्रकृति के सुकुमार पक्ष का वर्णन बड़ी संजीवता और सफलता
किया है । प्रकृति के कोमल पक्ष का चित्रण उनकी वैयक्तिक अभिरुचि
परिचायक है । उन्होंने अपने स्वभाव के अनुकूल शान्त एवं माधुर्य
वर्णन करते हुये उत्पल्ल-वन को कंपा देने वा हंसों और वृक्षों की शाखा

झूलते हुये पक्षियों के कोमल और मधुर कलरव की सुकुमार भंगिमा का वर्णन प्रस्तुत किया है ।

भवभूति ने केवल एक ही भयंकर रूप का वर्णन किया है अपितु कठोर और कोमल दोनों का ही बड़ा ही कमनीय चित्रण प्रस्तुत किया है—

"शकुन्तला-क्रान्त वानीर वीरुत्प्रसवसुरभिशीतस्वच्छाताया वहन्ति, फल-भररमणीयश्याम जम्बूनि कुञ्जस्खिलन मुखर भूरिस्रोतसो निर्भरिण्यः ।" इस प्रकार भवभूति ने दण्डकारण्य में कठोर एवं कोमल "भीषण भोगरुक्ष" और 'स्निग्धश्यामा' दोनों ही रूपों का सफल चित्रण प्रस्तुत करके अपनी अलौकिक कवित्व शक्ति का ररिचय दिया दिया है । चाहे कल-कल स्व करने वाली नदियों की ध्वनि हो, या पितृ-सद्म के वृक्षों पर लटकते हुये मृत शरीरों के मुण्डमाला के छिद्र भागों से ध्वनित हुये समीर की भयानकता हो । भवभूति में प्रकृति के अति सूक्ष्म रूप के अवलोकन करने की तीव्र क्षमता है । प्रस्तुतोदाहरण से प्रकृति कोमल और कठोरतम रूपों में चित्रित की गई है—

"स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरुक्षाः ।
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झांकृतैर्निर्झराणाम् ॥" २–१४

भवभूति ने अपने प्रकृति चित्रणों में स्थान-स्थान पर सघन ज़ाम्ब फल के निकुञ्जों के मध्य में नदियाँ बहति हैं ऐसा वर्णन प्रस्तुत किया है । उन्हीं सरिताओं के किनारों पर वेंत की झाड़ियों में पक्षियों का कलरव भी सुनाई देता है । वायु-वेग के कारण नदी में पड़े हुये वेतसपुष्प जल को गन्धयुक्त बना देते हैं । ये झरने परिपक्व फलों के स्तबकों से व्याप्त यमुना की सघन कोखाओं से टकराकर वहती रही हो, तव ये झरने अनेक धाराओं में शब्द करते हुये प्रवाहित हो उठते हैं ।

इस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य का वास्तविक, सुश्लिष्ट एवं विम्बयुक्तचित्रण किया है । भवभूति के प्रकृति-वर्णन में वर्ण्य-विषय की वास्तविक छवि का प्रभाव जन्य स्वरूप प्रतिविम्बित हो रहा है । भवभूति के प्रकृति-वर्णनों में नाद सौन्दर्य का अद्वितीय सम्मिश्रण मिलता है, उनके प्रकृति वर्णनों में ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति सशरीर अवतरित हो चुकी हो । इसके प्रमुख उदाहरण के लिये वन देवी वसन्ती, तमसा और मुरला आदि सरिताओं का चित्रण में मूर्तिवती मानकर किया गया है । इसी प्रकार भवभूति नें नदियों का मानवीकरण

किया है। उसका सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। जो अपर कवियों के वा कठिन है। 'उत्तर रामचरित' के तृतीयांक में मानवी सीता का छाया रूप चित्रण करना भी भवभूति की बुद्धि-विभूति का परिचायक है। ये सब भवभू के असाधारण प्रकृति-प्रेम का सूचक है।

भवभूति ने पशु खेचर, लतिका और वन्य पशुओं का मित्रता के अपूर्व चित्र करके अपनी विद्वता का परिचय दिया है। यथा भवभूति ने लिखा भी है—

"यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे।"

संस्कृत साहित्य में कालिदास का प्रकृति वर्णन प्रसिद्ध है, परन्तु भवभू के प्रकृति वर्णनों को पढ़कर ऐसा प्रतीत है कि—प्रकृति वर्णनों में कालिदास बाद भवभूति का स्थान भी कम नहीं है। केवल अन्तर इतना सा है कालिदास कोमल पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है और भवभूति कठोर पक्ष का परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि—भवभूति ने सुकोमल वर्णन किये नहीं, जो किये हैं वे असाधारण जान पड़ते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि भवभूति भी प्रकृति के सफल चित्रकार हैं।

प्रश्न १०—"एको रसः करुण एवं निमित्तभेदात्" इसकी सार्थकता सतर्क समीक्षा कीजिये।

अथवा

सिद्ध कीजिये कि "उत्तररामचरित" करुण रस से ओत-प्रोत नाटक है

अथवा

"कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते" प्रस्तुतोक्ति को उत्तररामचरित के आधा पर सिद्ध कीजिये।

उत्तर—भवभूति महान् रससिद्ध कवि हैं। आपने करुण और वीर रस मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। आपके तीनों नाटकों में तीन रसों की त्रिवेणी निकली है। आपकी कृतियाँ इस प्रकार से हैं—

कृतियाँ	रस
(१) महावीरचरित	वीर रस प्रधान

(२) मालतीमाधव — श्रृंगार रस प्रधान
(३) उत्तररामचरित — करुण रस प्रधान ।

उत्तररामचरित में करुण रस से आग्रह किया गया है । इस नाटक में अपने करुण रस को ही सर्वप्रधान एकमात्र रस की घोषणा करके समग्र रसों के मूल में करुण को ही स्वीकार किया है । उत्तररामचरित नाटक के कारुणिक वर्णनों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता मानो कवि करुण रस अभिव्यंजना करने में सिद्धहस्त है । जिस प्रकार कलिदास को अभिज्ञानशाकुन्तल के कारण अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई, उसी प्रकार भवभूति की ख्याति को अमर करने वाला "उत्तररामचरित" नाटक है । कालिदास ने जहाँ शकुन्तला के स्वरूप का वर्णन किया है, तो भवभूति की करुणा भी इससे लाखों गुनी बढ़कर हैं ।

वास्तव में यदि गाम्भीर्य से विचार किया जाये तो यह सार निकलता है कि करुणा ही कविता की मां अथवा आविष्कर्त्री है । महर्षि वाल्मीकि को ख्याति भी करुणा से प्राप्त हुई । वाघ द्वारा क्रौञ्चमिथुन में से एक को मारने पर स्वतः ही उनके मुख आदि गीति प्रस्फुटित हो जाती है—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।" २–५

इस श्लोक की करुणमय सृष्टि से प्रेरित होकर आदि कवि वालमीमिकि ने जिस करुणिक चित्रों को खोजते ही रहे । उस राम के उत्तरकालीन जीवन के सीता-त्याग रूपी आच्छन्न करुण दृश्य का निरीक्षण भवभूति ने किया है जिसका मूर्तरूप 'उत्तर रामचरित' में स्थित है ।

'उत्तररामचरित' की रचना करने से केवल भवभूति कवियों में प्रतिष्ठा ही नहीं अपितु अमरता भी प्राप्त हुई । इसके अलावा भवभूति संस्कृत नाट्य परम्परा में भी परम्परागत ख्याति को आक्रान्त करके नाटकीय कला में नवीनता का अविष्कार किया है । जो नूतनता यह है कि—नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक में एक ही रस का प्राधान्य रूप आवश्यक है, वह रस चाहे श्रृंगार रस हो या वीर रस हो । परन्तु रसानुभूति भवभूति इस मान्यता के विरोध में प्रधान रस करुण को ही उत्तररामचरित में स्थान प्रदान किया है ।

कुछ साहित्यालोचकों ने उत्तररामचरित में वियोग श्रृंगार मानने का प्रयास किया है, परन्तु समाज इस मान्यता को अनादर की दृष्टि से देखता है। वास्तविकता कुछ अन्य ही है। वियोग श्रृंगार और करुण रस की भूमिका में आकाश-धरती का सा अन्तर प्रतीत होता है। अतः दोनों को एक किस प्रकार माना जा सकता है?

श्रृंगार के विनियोग पक्ष का खण्डन भवभूति के अधोलिखित श्लोक से ही हो जाता है। वास्तव में भवभूति जानबूझकर श्रृंगार और वीर रस में किसी एक के प्राधान्य को आक्रान्त करके करुण रस की प्रधानता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुदबुदतरंगमयान्विकारान्,
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥" ३–४७

एकमात्र रस करुण रही है अन्य रस उसी के प्रकाशान्तर स्वरूप हैं। जिस प्रकार एक ही सलिल अनेक प्रकार के भंवर, तरंग और बुलबुलों के रूप में परिवर्तित हुआ, मूलरूप से एक ही है। उसी प्रकार समग्र रसों में करण सबसे मूल स्थित है। इस मान्यता का रसानुभूति भवभूति ने उत्तररामचरित में भली-भाँति पालन किया है। करुण रस ही इस नाटक की कथावस्तु का बीज है। जो कथानक के आरम्भ, विकास और अवसान में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

उत्तररामचरित का कथानक आरम्भ प्रथमांक में दर्शनांक से होता है। इस चित्रपट को देखकर श्रीराम एक तरफ दण्डकारण्य के निवास की याद से सन्तप्त होते हैं और साथ ही जानकी के भावी वियोग की आशंका से मलिन हो जाते हैं। भावी दुःखद घटना की सूचना देने में भवभूति अपने अतुलनीय कौशल का नमूना प्रस्तुत किया है। रामाँक में शयन करती हुई जानकी के प्रति श्रीराम के चित में यह टीस उत्पन्न होती है कि इस जानकी की मुझे सब वस्तुएं प्रिय हैं, अप्रिय है तो केवल असह्य विरह है। यथा भवभूति ने स्वयं कहा है—

"किमस्य न प्रियः परमसह्यस्तु विरहः।"

प्रस्तुत पंक्ति से ही राम के जीवन की भावी घटना की सूचना प्राप्त हो जाती है। प्रथमांक की वेदना, पीड़ा, संताप आदि की प्रस्तावना, द्वितीयांक में साकार रूप में होती हुई सी प्रतीत होती है। जब राम पञ्चवटी में घुसते हैं तो वह दीर्घकालीन परिचित स्थानों का अवलोकन करके पूर्व स्मृतियाँ कष्ट का स्वरूप को धारण करके अभिव्यक्त हो गई। यथा श्रीराम ने अपने मुखारविन्द से कहा है—

"चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः,
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः,
धनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च॥" २—२६

श्रीराम कहते हैं कि—यह मेरा धनीभूत शोक का दीर्घकाल के पश्चात् आज अचानक उमड़कर मेरे समग्र वपु में तीव्र विषवत् फैल रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे हृदय में गड़े हुए शल्य शकल खण्ड को किसी ने अचानक हिला दिया हो। मेरी मर्म स्थली घावों से भरपूर है ऐसा ज्ञात होता है कि आज वह घाव फूट गया हो, यह भयावह दुःख मुझे दुःखी कर रहा है। जिससे मुझे बार-बार मूर्च्छित होना पड़ रहा है।

सुकोमल हृदय भवभूति ने श्रीराम की उस मानसिक दशा की स्थिति का वर्णन प्रस्तुत करके रामचन्द्र के अवनि पाल होने के प्रायश्चित्त का निदर्शन प्रस्तुत कर दिया है। राम के ऊपर जो सीता का त्यागजन्य कालिमा लगी थी, भवभूति ने तृतीयांक में छाया जानकी (सीता) का दृश्य उपस्थित करके उस कालिमा को धो दिया है, उसके धोने में कवि ने बड़ी ही चतुरता से काम लिया है। इसी प्रसंग में बासन्ती की उपस्थिति सोने में सुगन्धिवत् प्रतीत होती है। वासन्ती श्रीराम को प्राचीन स्मृतियाँ को याद करवाकर, उनकी वेदना को और अधिक वृद्धि को प्राप्त कराती है और कहती है कि—हे राम! यह लता कुञ्ज है, जिसके द्वार-स्थित आप गोदावरी के तट पर स्थित हंसों के साथ मनोविहार करने वाली जनक-तनया की प्रतीक्षा किया करते थे। उस गोदावरी के लौटी हुई सीता आपको प्रतीक्षारत देखकर कर-कमलों से हाथ जोड़कर मुग्धा एवं कातर भावा वह आपको प्रणाम करती थी यथा अधोलिखित श्लोक में भवभूति ने लिखा भी है—

"अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्ते क्षणः,
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य वद्धस्तया,
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥" ३–३७

इस दण्डाकरण्य में दीर्घकालीन निवास के कारण यहाँ वृक्ष, लतिता; खग, मृगादि सभी जानकी के साथ रहने के साक्षी थे इनका अवलोकन करके ही राम के चित्त-व्याप्त वियोग से पञ्चवटी के पशु, खेचर, वृक्ष और लताओं ने भी अश्रु स्राव किया। आज पुनः पञ्चवटी दर्शन ने राम व्यथातुर वना दिया कि मुझे पञ्चवटी प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दृश्य में सीता ही सीता दीख पड़ती है। यही कारण है कि—पञ्चवटी की हर एक वस्तु को स्पर्श करने पर सीता को स्पर्श करने की भाँति प्रतीत होता है या प्रत्येक दृश्य में सीता—अवलोकन के आनन्द की प्राप्ति होती है। रससिद्ध भवभूति का यह कारण्य-चित्रण मनोवैज्ञानिकता की सूक्ष्माति सूक्ष्म वुद्धि का परिचय देता है। अतः भवभूति करुण रस के प्राचार्य और एक सफल नाटककार हैं। यथा भवभूति के कारुण्य-चित्रण में सजीवता, सशक्तता और अनुभव की सफलता की अभिव्यञ्जना मिलती है वैसी अन्यत्र प्राप्त नहीं होती।

तृतीयांक के पश्चात् चतुर्थाङ्क में वाल्मीकि के आश्रम में जनक और कौशल्या के मिलन के समय वड़ा ही हृदय-विदीर्ण करने वाले करुणरस सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। जनक की अवस्था का चित्रण करते हुये भवभूति ने कहा है कि—जनक की दशा इतनी खराव है कि—वृद्धत्व में पुत्री के विरहदग्ध हृदय, सूखे वृक्ष की भाँति हड्डियों का ढाँचा ही अवशिष्ट जनक की शान्ति ही खो गई है। जनक की अवस्था जानकी विरह से वड़ी ही शोचनीय हो गई है। प्रथम तो वह चिर तपस्या के कारण जीर्ण-क्षीण शरीर पर वृद्धावस्था का प्रभाव और उस पर भी सन्तान का दुःख, इस दशा में जनक के कष्टों का कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। इस शोक ने जनक राज के अश्रुओं को सुखा दिया है। जिसके कारण वह अपने भयंकर दुःख को रोकर भी किसी के सामने अभिव्यक्त नहीं कर सकता है।

लक्ष्मण सुत चन्द्रकेतु और लव के युद्ध का समाचार प्राप्त करके सीता का मन अत्यन्त खिन्न होकर अतीव करुणामय ढंग का जो वर्णन प्रस्तुत

किया है वह भी अद्वितीय है षष्ठमक में युद्ध के मध्य में श्रीराम पुष्कर विमान से आते हैं तथा लव को देखकर अमिट छाप युक्त राम के हृदय में सीता की आकृति के समान लव को देखकर राम का हृदय विह्वल हो उठता है, आसन्न प्रसवा सीता का चित्र राम के चित्त में अंकित है। वह राम शोक सन्तप्तता का अनुभव करते हैं। उनको सीता के विरह में समग्र संसार शून्य जंगल की भाँति प्रतीत हो रहा है। श्रीराम को ऐसा अहसास हो रहा है मानो उनका शरीर जाज्वल्यमान अंगारों में स्थित हो। ऐसा ही भवभूति ने वर्णन किया—

"जगज्जीर्णारण्यं भवति च विकल्प व्युपरमे।
कुकुलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत एव॥" ६

श्रीराम सीता से मिलने को इस प्रकार आकुल हैं कि—अचानक वह यह कह उठते हैं कि—हे सीते ! तुम कहाँ हो ? तुम्हें प्राप्त करने के उपायों को ढूँढ़ने में मैं परास्त हो गया क्योंकि इस वियोग में खोने के लिये सुहृद सुग्रीव की मित्रता व्यर्थ हो रही है और प्रिय स्नेह के पात्र वानरों का बल, वृद्ध जामवन्त की युक्ति, हनुमान का अदम्य बल एवं शौर्य तथा सोमित्रेय का अपूर्व युद्ध कौशल सभी तो हार मान चुके हैं अर्थात् तुम्हारी खोज में समग्र शक्तियाँ और युक्तियाँ व्यर्थ सी प्रतीत हो रही हैं। अब कैसे मैं तुम्हें देखूँ, तुम कहा हो ? इसका कुछ पता नहीं।

भवभूति की ममस्पर्शी करुणा रस वाणी किसके हृदय को प्रभावित नहीं करती अर्थात् सबको प्रभावित करती है। यहाँ तक कि जड़ में चेतनता और चेतन में जड़ता का संचार हो जाता है यह भवभूति के अधोलिखित श्लोक से स्पष्ट हो रहा है—

"जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद्गिरा।"

भवभूति का करुणा के विषय में अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ ? आपकी करुणावाणी की सुन्दर अभिव्यञ्जना का मूर्तरूप तो हमें उत्तररामचरित में मिलता है। उस कारुण्य-वर्णन को सुनकर तो साक्षात् करुणा का हृदय भी द्रवीभूत हो जाता है। यही नहीं अपितु प्रकृति के पत्थरों को भी रोना आ जाता है और वज्र का भी हृदय विगलित हो उठता है यथा कवि ने स्वतः ही कहा है—

"अपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्यापि हृदयम् ।"

भवभूति के करुण वर्णनों से प्रभावित हुआ 'आर्यासप्तशती' के प्रणेता गोवर्द्धनाचार्य स्वतः मुखरित होकर कह दिया कि—

"भवभूतेः सम्बन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतं कारुण्यं किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥"

उपर्युक्त श्लोक श्लेष युक्त होने के कारण इसके दो अर्थ हैं इसका एक अर्थ तो भवभूति के पक्ष में और दूसरा अर्थ भगवान् चन्द्रमोलि के पक्ष में घटित होता है। भवभूति कवि अथवा भगवान् चन्द्रमौलि के सम्वन्ध से सरस्वती भी हिमालय-तनया उमा के सादृश सुशोभित हो रही है, क्योंकि जव (भवभूति की वाणी अथवा पार्वती) करुणा भाव की अभिव्यञ्जना (उमा के पक्ष में विलाप) करने लगती है, तव अन्यों की वात ही क्या पत्थर भी रो पड़ते हैं। भवभूति ने श्रीराम को कारुण्य-अवस्था का स्पष्ट चित्रण करते हुये श्रीराम के गाम्भीर्य और उनके मर्यादित स्वरूप का चित्रण कितना सुन्दर खींचा है—

"अनिर्भिन्नो गंभीरत्वादन्तर्गूढ़घनव्यथः ।
पुटपाकप्रीतीकाशो रामस्य करुणो रस ॥"

श्रीराम यह करुणा उस पुटपाक के सादृश है जिसमें अति तीव्र अन्तःपीड़ा प्रज्जवलित हो रही है। वह तीक्ष्ण पीड़ा चित्त के मार्मिक स्थल में शल्यवत् चुभकर भयंकर पीड़ा की उत्पत्ति करती है। परन्तु राम की यह करुणा कभी भी श्रीराम की मर्यादा का अतिक्रान्त नहीं करती है और व्यर्थालाप भी नहीं करती है। परन्तु राम की इस अन्तःगूढ-प्रगाढ़ पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करने के वास्ते कवि कभी श्रीराम की मूर्च्छितावस्था का वेग तभी कम होता है जवकि उसके अश्रु स्रावकर वाहर निकाल देता है। इसका अभिप्राय यह है कि भवभूति ने भी कहा है कि—जलाशय के पूर्णरूपेण भर जाने पर नालियों द्वारा उसके सलित को वाहर निकाल देने में ही मंगल होता है उसी प्रकार भवभूति के शब्दों से ही स्पष्ट है—

टक पुरोत्पीडे तड़ागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ॥

इस प्रकार रसानुभूति ने करुणरस की अभिव्यञ्जना अपने इस नाटक

में प्रस्तुत की है, उस कारण रस के व्याख्या स्वतः ही सिद्ध हैं। उस करुण रस की समता में कहाकवि सूरदास के वियोग वात्सत्य भी आता है।

वास्तविकता यह है कि—संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि भवभूति ने जिस करुण की जान्हवी की जलधारा चिरन्तन प्रवाहित की है, वह आज सुधारा हमेशा भारत भू को अभिसिक्त करती रहेगी। अतः कहा भी है कि—यदि करुण रस-योजना में सफल कवि हैं तो वह संस्कृत साहित्य में केवल एक मात्र भवभूति हैं। भवभूति द्वारा प्रवाहित जान्हवी से सीता-त्यागोपन्न राम को कालिया का परिमार्जन तो हो ही जाता है और साथ ही साथ दो प्रेमी राम और सीता के शुद्ध चित्त का स्पष्ट प्रतिविम्ब दर्शकों के हृदयों में प्रतिविम्ब हो उठता है। करुण रस के क्षेत्र में महाकवि भवभूति की समानता करने वाला कोई कवि नहीं है—

"कारुण्यं भवभूति खेतनुते ॥"

रसानुभूति भवभूति के करुण रस की ऐसी मार्मिक अभिव्यञ्जना है कि—उसके प्रभाव से जड़ चेतनवत् चेतन जड़वत् हो जाता है—

जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभवद्द गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्याः हसतः स्म स्तनावपि ॥

प्रश्न ११—नाटकीय तत्वों के आधार पर भवभूति और कालिदास की तुलना कीजिये।

उत्तर—संस्कृत साहित्याकाश के अमरमणि कालिदास और भवभूति का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और पुराणवेत्ता महर्षि व्यास दोनों के प्रकाण्ड पाण्डित्य का नापना असम्भव है उसी प्रकार कालिदास और भवभूति के पाण्डित्यों का भी पता लगाना भी दुष्कर है। अर्थात् कालिदास और भवभूति की अतुलनीय मेधा सीमा के बन्धन से परे हैं। परन्तु यह अवश्य है कि—भवभूति और कालिदास दोनों की रचनाओं में साम्य और वैषम्य दोनों ही मिलती हैं। भवभूति कृत उत्तररामचरित में प्रयुक्त विशेषताओं को देखकर आलोचकों ने भवभूति की तुलना में कालिदास से की है। दोनों की रचनाओं से उदात्त कल्पनाओं का सामंजस्य, प्रौढ़ शब्द चयन और सरसता आदि समग्र गुणों का सम्मिश्रण मिलता है। कालिदास की अनुपमेय उदात्त कल्पना सर्वथा कवि जनों के लिये अभिप्सित, चिरस्मरणीय तथा पूजनीय हैं और रहेगी। साथ

ही भवभूति विरचित विभिन्न मनुष्य सम्वन्धी मानसिक धर्मों का सफल वर्णन सब प्रकार से चिर नूतन और स्पृहणीय है। कालिदास और भवभूति की तुलना में दीर्घकाल से ही विद्वत्त-परिपद् की चर्चा विपय वना हुआ। न केवल भारतीय ही विद्वान् अपितु विदेशी विद्वानों ने भी इन दोनों की तुलना पर अपना ध्यान आकृप्ट किया है। प्रो० विलसन कालिदास और भवभूति की तुलना करते हुये कहा है कि—"The former (कालिदास) suggests or indicates the sentiment while the latter expresses in forcible language—

इन दोनों कवियों के समर्थकों ने कालिदास को 'कवि कुलगुरु' तथा भवभूति को 'सरस्वती के कृपापात्र' आदि उपाधियों से अलंकृत किया है। परन्तु दोपान्वेषक विरोधियों ने अपने विचारों को इस प्रकार एक ही श्लोक में समेट कर प्रस्तुत कर दिया है—

"कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर्महाकविः।
तरवः पारिजातद्याः स्नेहीवृक्षोमहातरुः॥"

भवभूति के समर्थकों का कथन है कि—कालिदास तो केवल कवि हैं और भवभूति 'महाकवि' है। परन्तु कालिदास के समर्थकों का कहना है कि—देखो सुर-पुर का वासी 'परिजात' वृक्ष को केवल तरु कहते हैं और भूमि पर मिल जाने वाले स्नुही वृक्ष को महातरु कहते हैं। इस लोक व्यावहारिकता के अनुरूप आप स्वयं विमर्श पूर्वक निर्णय करें कि—परिजात को तरु कहने से क्या उसके गुणों में न्यूनता आ जाती है—अर्थात् कभी नहीं, और सेहुड़ को 'महातरु' कहने से उसके गुणों की वर्पा होने लगती है। नहीं ठीक यही समझकर कालिदास तरु होते हुये 'पारिजात' सदृश है और स्नुही को महातरु कहने के अनुसार महातरु होते हुये भी स्नुही के सादृश हैं। परम्परा विख्यात इसमें वड़ा व्यङ्ग्य छिपा है। इन दोनों महाकवियों की तुलना के वास्ते कुछ तर्क इस प्रकार हैं—

(१) सर्वप्रथम हम कालिदास और भवभूति की चित्रण शैली और कलात्मक सौप्ठवता पर ही दृप्टिपात करें तो इस विषय में दोनों में काफी अन्तर है। कालिदास की भाषा में वैदर्भी रीति, सरल, स्वाभाविक, मृदुल एवं

मनोहर हैं, भवभूति की रचना-प्रणाली कृत्रिम, श्रमशिल्पित, प्रौढ़ तथा प्रगाढ वन्ध वाली है। उसमें प्रशस्त और प्रभावशाली समासों का अविरल छटा है। अतः कालिदास की भाषा मसृण सुकुमार है और भवभूति की प्राय प्रगल्भ उदात्त है। इस प्रकार यह कहना चाहिये कि—कालिदास की रचना में शब्दों लाधवता और व्यङ्ग्यार्थ प्रधान है तथा भवभूति की रचना शैली वाणी का विस्तार और वाच्यार्थ प्रधान है ऐसा प्रतीत होता है। अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक दुष्यन्त शकुन्तला को देखने की प्रवल इच्छा को बड़े अल्प शब्दावली में गूँथ डाला। परन्तु भवभूति ने मालती माधव में माधव अपनी प्रेमिका मालती को देखने की निरन्तर अभिलाषा को ही बड़े-बड़े वाक्यों (संवादों) द्वारा वताया है। धवल-कमलों की माला ने मानों मुझे सिर पैर तक ढक लिया है, मानों मुझे दूध की अजस्र धारा में मज्जन कराया जा रहा है। मालती के कानों तक विस्तृत संतृष्ण नेत्र मानों मुझे पी रहे हैं। साथ ही मुझे ऐसा भी प्रतीत होता है कि मेरे ऊपर अमृत-धारा निरन्तर पतित हो रही है। इससे यह ज्ञात हो रहा है कि—कालिदास जिन भावों का ग्रन्थन अल्प शब्दों में कर सकते थे, भवभूति उसी भाव को विपुल शब्दाडम्वर में अभिव्यक्त करते हैं।

(२) यदि हम दोनों के विरहों का वर्णन करें तो कालिदास ने अपने पात्रों की प्रिय के विरहोत्पादक कष्ट का वर्णन केवल अश्रु स्राव तक ही सीमित है परन्तु करुण वर्णन में भवभूति तो पात्रों के मनोस्थित भावों का ऐसा विरह चित्र खींचते हैं कि उनके प्राण ही सन्देहास्पद वन जाते हैं। साथ ही करुणा का ऐसा हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी एवं अन्तःकरण को झकझोरने वाला वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। उस करुणा को देखकर तो प्रस्तर खण्ड भी द्रवित हो जाते हैं। उस वर्णन के विषय में अन्य विद्वानों ने कहा भी है कि—

"कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।"

(३) कालिदास की अन्तः वृत्ति प्रकृति के रमणीय दृश्यों में रमी है। शाकुन्तल में तो जड़ प्रकृति भी एक सजीव पात्र विशेष का रूप ग्रहण कर लेती है। उनकी दृष्टि प्रकृति के लालित्य एवं सुकुमार रूप पर रहती है।

भवभूति की प्रकृति के भयंकर एवं घनघोर पक्ष के स्वरुचि अधिक है। उनके नाटकों में प्रकृति की पृष्ठभूमि के रूप में, उद्वेलित रूप में ही अधिक प्रयुक्त है। डॉ० कीथ ने भवभूति के उत्तररामचरित के प्रथम तीन अंकों में प्रस्तुत काननों और सरिताओं के कठोर एवं सुकोमल तत्वों का एक साथ वर्णन उनकी उत्कृट कला का प्रतीक है। 'कीथ' महोदय लिखते हैं कि—"प्रकृति के कठोर और सुकोमल दोनों प्रकार के तत्वों का चित्रण महति शक्ति के उपयोग प्रचुर अवसर भवभूति को उपयुक्त तीन अंकों में मिलता है। प्रकृति में जो अपनी महिमा से चकित कर देने वाले और शोभाशाली है, वह भवभूति के लिये आकर्पक हैं। कालिदास के अपेक्षाकृत सीमित प्रकृति प्रेम में उसकी अभिव्यञ्जना नहीं हुई। अन्तिम अंक में वे कालिदास से भी उत्कृष्ट हैं, क्योंकि सीता और राम के पुर्नमिलन में भाव की गहराई है। दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन के अपेक्षा निर्जीव चित्र से यह भाव उद्बुद्ध नहीं होता। राजर्षि दुष्यन्त और उसकी तपोधना प्रेयसी की अपेक्षा राम-सीता अधिक मार्मिक जीवन तथा गहनतर अनुभूति के प्राणी हैं।

(४) नारी के बाह्य सुन्दरता का सफल चित्र को प्रस्तुत करने में अत्यन्त निपुण चित्रकार हैं। आपने पक्वविम्वाधरोष्ठी के रूप में देखा है। परन्तु भवभूति का विचार इनसे भिन्न है। उन्होंने गृह-लक्ष्मीवत् स्त्री सम्मान की दृष्टि से देखा है। भवभूति ने नारी के अन्त लावण्य एवं उसके पावन मर्यादा युक्त प्रेम का वड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। इसी कारण भवभूति का प्रणय-चित्र एक आदर्श-प्रणय चित्र का स्वरूप अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है। उनके प्रणय वर्णन में आदर्शता, विशुद्धता, संयम तथा मर्यादा का जो रमणीय उत्कर्प प्रस्तुत है, वह विश्वसाहित्य में अद्वितीय है।

(५) भवभूति की कृतियों में पाण्डित्य का चरमोत्कर्प है, कालिदास की कृतियों में उसका अभाव है। यदि कहीं कालिदास की कृतियों में पाण्डित्य का कुछ अंश दीख पड़ता है, वह तो शास्त्रीय मर्यादा मात्र का पालन करने के लिये ही दीख पड़ता है।

(६) यदि हम दोनों की रुचियों का मूल्यांकन करते तो रुचियाँ भी सर्वदा भिन्न प्रकार की हैं। कालिदास ने अपने नाटकों में मनोविनोदार्थ विदूषक

नामक पात्र की आवश्यकता को समझा है और उसको प्रत्येक नाटक में स्थान प्रदान किया है। परन्तु भवभूति में इस प्रवृति का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। वह तो प्रकृति के गम्भीरतिगम्भीर, नियमित एवं मर्यादा-युक्त भावों के सफल चित्रकार हैं। अतः आपकी रचना में पाण्डित्य-प्रदर्शन और गाम्भीर्य के दर्शन होते हैं।

(३) उक्त वर्णित भवभूति और कालिदास के अन्तर को प्राप्त होते हुए भी दोनों की कृतियों में पर्याप्त-घटना साम्य का दर्शन होता है। भवभूति ने उत्तररामचरित के प्रथमांक में चित्र दर्शनांक की योजना करके पूर्वानुभूत वन आदि का चित्र वीथी उपस्थित किया है। कालिदास ने भी रघुवंश के चौदहवें सर्ग के चित्रण में राम-सीता का एक चित्रशाला (Drori-room) में बैठे हुए का चित्रण किया है। अपने व्यतीत जीवन के चित्रों को देखा करते थे, जिनमें जंगल की दुःखद घटनाओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उन चित्रों का वर्णन करते हुए अतीतानुभूत कष्ट-प्रद चित्र भी प्राचीन सुख प्रदान करते थे, यथा अधोलिखित श्लोक से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है—

"ततोर्यथा प्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपिदण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्॥"

इस दर्शनांक से यह संकेत प्राप्त कर रसानुभूति भवभूति ने अपने कृति उत्तररामचरित में प्रथमांक में दर्शनांक का चित्र वर्णित किया गया है। इसके षष्ठांक में अचानक लव और कुश का मिलन की घटना शकुन्तला के सप्तमंक में दुष्यन्त की भरत की भेंट की घटना से साम्य स्पष्ट प्रतीत होता है। भवभूति ने तीसरे अंक छाया में सीता का वर्णन प्रस्तुत किया है। वह भी अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक में अदृश्य भानुमती के चित्रण से समानता रखता है। इसी प्रकार मालतीमाधव के नवें अंक और विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक में विरही माधवमालती, के लिये मेघ द्वारा सन्देश भेजता है। अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास की कृति भवभूति के लिये प्रेरक है। उनके प्रभाव से प्रभावित होकर ही उपर्युक्त समानताओं का चित्र कालिदास से गृहित किया है।

डॉ बासुदेव शरण ने महाकवि की प्रस्तावना में लिखा है कि —सर्व-

प्रथम कालिदास और भवभूति इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन सर्वप्रथम श्री द्विजेन्द्र लाल राय द्वारा किया था। कालिदास और भवभूति की आलोचना के प्रति प्रायः सभी पाठकों का मन आकृष्ट होता है। क्योंकि दोनों कवियों की कल्पना उच्चकोटि की है, जहाँ अन्य नाटककार पीछे रह जाते हैं। हम अपनी सम्मतियों में रसानुभूति भवभूति की काव्य-शक्ति और कल्पना का विस्तार दण्डक वन के पर्वतों के समान प्रतीत होता है। परन्तु फिर भी कालिदास, कालिदास के समान ही हैं। कालिदास न केवल भारत में ही अपितु सम्पूर्ण विश्व के अद्वितीय कवि एवं नाटककार हैं। अतएव पुरातन आचार्यों ने कवियों ने गुरु कालिदास को 'सरस्वती का विलास' कहा है और वह यथार्थरूप में दृष्टिगोचर होता है। अन्य कवि कालिदास की समानता तो क्या उमकी छाया में पहुँचने पर ही वह बहुत बड़े श्रेय का भागीदार हो जाता है। निःसन्देह, भवभूति उस पद तक पहुँचते हैं।

ऊपर लिखित विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास और भवभूति की रचनाओं में साम्य और वैशम्य का साक्षात्कार होता है। जहाँ भवभूति की रचना में समानता दीख पड़ती है, वहाँ कालिदास की कृतियों का प्रभाव भी भवभूति पर दर्शनीय है। जहाँ विषमता होती है वहाँ पर भवभूति का पाण्डित्य और उनकी व्यक्तिगत मान्यता मर्यादायुक्त आदर्श एवं अभिरुचि की छाया परिलक्षित होती है। इसके अलावा विद्वानों की यह मान्यता एवं धारणा है कि कालिदास शृंगार के प्रतिपादन में अतुलनीय एवं असाधारण धीमान् महाकवि हैं और भवभूति कर्म के क्षेत्र में अप्रतिम एवं अद्वितीय नाटककार हैं। इसी करुणा के वैशिष्ट्य से प्रभावित होकर साहित्य समालोचक रामचरित के विषय में यह उक्ति कहने के लिये वाध्य हो गये और भवभूति कालिदास से भी आगे बढ़ गये हैं। यथा—

"उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते।"

इसीलिये यह कहना उचित है कि कालिदास के पश्चात् यदि कोई नाटककार है तो वह भवभूति, अन्य नहीं। जिसकी नाटचकला की तुलना कालिदास से कर सकते हैं भवभूति कालिदास से कुछ अंशों में प्रभावित हुआ है। करुण रस के या कुछ ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनमें वह पूर्णरूपेण सफल

हुये और यथा अभिरुचि व्यक्तिगत स्वतन्त्र विचारों का उचित वर्णन किया है। अतः श्रृंगारी कवि कालिदास अपने क्षेत्र में अतुलनीय एवं असाधारण कवि हैं तो भवभूति भी करुण रस के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट महाकवि हैं। इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रश्न १२—भवभूतिप्रणीत उत्तररामचरित में वर्णित छायाङ्क नामक तृतीय अङ्क की महत्ता का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—भवभूति द्वारा तृतीय अङ्क जो करुण की निरन्तर सरिता को प्रवाहित किया, उस धारा से अवगाहन करने वाले साहित्य समालोचकों को यह उक्ति कहने को वाध्य होना पड़ा कि—कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।" इस अंक में नाटकीयता के अवरोधक तत्व दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक वर्णन की सफलता के कारण इस अंक का अन्य अंकों से विशेप महत्त्व परिलक्षित होता है। इसी अंक में सीता अपने सुपुत्र-सुमुनों की वर्षगाँठ के शुभावसर पर सूर्याराधना हेतु अदृश्य परिस्थिति में पञ्चवटी में आती है। वहाँ दाम्पत्य जीवन के परिचित जगहों का अवलोकन करने से विरहाकुल राम को देखती है। इसमें विरह का ऐसा करुण रूप अभिव्यञ्जित होता है कि विरह-व्याकुलता जानकी करुण की प्रतिमूर्ति व्यथा ही प्रतीत होती है और राम की व्यथा का कारुणिक चित्र अंकित किया गया है, वह विश्व साहित्य का अद्वितीय चित्र है, अन्यत्र दुर्लभ है। अतः भवभूति की करुण रस की महान् अभिव्यक्ति के कारण इस अंक का सर्वाधिक महत्त्व है। उत्तररामचरित का तृतीयांक के नाम से कथित है।

मनोवैज्ञानिक तथ्य—दण्डक वन के पर्वानुभूत दाम्पत्य जीवन से परिचित स्थानों को देखकर श्रीराम के हृदय में जानकी की यादों की प्रतिमूर्त्ति रूपधारणा अधिष्ठित हो जाती है और दूसरी ओर तपसा से आयी हुई जानकी के हृदय मानस पटल पर राम ने अकारण ही निर्वासन से उत्पन्न दुःख को शान्त कर दिया है और श्रीराम के गाढ़ प्रेम का साक्षात् परिचय प्राप्त करती है। पञ्चवटी में जानकी अपने प्रिय राम के हृदय-स्पर्शी और हृदय विदारक करुण दशा का साक्षात्कार करती है। इस 'छायांक' के विपय में पण्डित बलदेव प्रसाद उपाध्याय जी कहते भी हैं कि एक ओर श्रीराम

अपने वनवास के प्रिय सखा पञ्चवटी के परिचित स्थानों का अवलोकन करके सीता के वास्ते विलाप करते-करते मूछित हो जाते हैं और दूसरी ओर छाया सीता राम के इस प्रणय को स्मरण करके अपने वनवास जन्म कठिन कष्टों को भी लात मार कर अपने निःसार जीवन को धन्य मानती है। राम उस छायामयी जानकी का स्पर्श पाकर सचेत हो जाते हैं परन्तु अपने नेत्रों से उसका अवलोकन नहीं कर पाते। यहाँ आकर कवि ने खूब 'काव्यन्याय' का परिचय दिया है। लोकापवाद से निर्वासित करने वाले राम का कारुण्यमय रोदन को सुनकर जड़-पत्थर भी सचमुच रो उठते हैं।" जैसा कि इस अंक में दर्शाया गया है। ऐसी चमत्कृति आज तक कोई भी कवि नहीं कर सका, न भविष्य में होगा ही। इस नाटक की करुणा को देखकर करुणा भी करुणान्वित होकर द्रवीभूत हो जाती है तो आलोचक का यह कहना सत्य ही होगा कि—

"जड़ानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद्गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत्पार्वत्याः हसतः स्म स्तनावपि॥"

रसानुभूति भवभूति ने 'छाया सीता' की जो कल्पना प्रस्तुत की है वह सर्वथा नवीन प्रकार की है। उसी कल्पना के कारण यह तृतीयांक छाया अंक के नाम से विख्यात है। यह छाया सीता वाला प्रसंग रामायण में नहीं है। यह तो कवि.प्रतिभा-जन्य है। इसी अंक में कवि ने करुणार्ण्व उडेल दिया है। अंक के आरम्भ में ही मुरला श्रीराम के विरण का वर्णन इस प्रकार करती है कि—

"अनिर्भिन्नो गम्भीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रीतिकाशो रामस्य करुणो रसः॥" ३/१

इसके बाद मुरला यह कहती है कि—इस प्रकार श्रीराम और जानकी जैसे व्यक्तियों की यह करुण दशा कैसी विचित्र है, जिसमें गंगा और पृथ्वी भी सहायता कर रही हैं—

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकारिणोभावमायात्येवंविधो जनः।" ३/३

इस अंक में कवि द्वारा प्रस्तुत मानवीयकरण भी अद्वितीय है क्योंकि—

इसमें नदियाँ भी आपस में श्री जानकी की विरहवेदना का कितना सुन्दर वर्णन करती हुई तमसा कहती है—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधति विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणीविरहव्यथेव वनमेति जानकी ।। ३/४

वह वनवासी सीता पूर्णरूपेण पीतवर्णा एवं कृशकपोलों से रम्य मुखारविन्द पर चञ्चल केश उद्वेलित हो रहे हैं ऐसी वह सीता विरहाकुल-वेदना की साक्षात् प्रतिमूर्ति या करुणा की मूर्ति ही वन में विचरण कर रही हो ।

दीर्घकालीन परिचित पंचवटी की जगहों को देखने से श्रीराम और जानकी के विरहोत्पन्न कष्ट से मूर्छा को प्राप्त होने लगते हैं यथा इस अधोलिखित श्लोक से सब स्पष्ट हो जाता है—

"अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ।।" ३/९

सीता, श्रीराम की एक विचित्र करुणामय अवस्था को देख अत्यन्त ही द्रवितहृदया हो जाती है । तमसा जानकी के चित्त का बड़ा ही 'भाव शबलता' का हृदयस्पर्शी एवं मर्मग्राही वर्णन करती हुई कहती है—

"तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्-,
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं,
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव ।।" ३/१३

हे जानकी ! इस समय तुम्हारा चित्त समागम की निराशा से खिन्न हो रहा है । पति द्वारा अपवाद सहित त्यागस्वरूप अप्रिय व्यवहार से क्रोध युक्त की भाँति कलुषित एवं दुःखी हो रहा है और विरह की सीमा दीर्घतर होने के कारण अचानक साक्षात्कार से जड़ीभूत अथवा सुन्न हो रहा है और प्रिय राम के आनन से स्वाभाविक प्रणय-व्यञ्जक शब्दों को सुनने से तथा प्रेम-दर्शन से प्रफुल्लित हो रहा है । इस समय आपका चित्त स्नेह-विभोर हो रहा है । इस श्लोक में भाव शबलता का स्पष्ट चित्र देखा जा रहा है ।

इस छायांक में तमसा राम-सीता के गाढ़ प्रणय-वर्णन के सन्दर्भ में सन्तान को प्रेम (आनन्द) की परम स्थिति बताती हुई सन्तान को आनन्द ग्रन्थि कहती है—

"अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते ॥" ३/१७

नाटकीयता—यदि हम इस छायांक में नाटकीयता के दर्शन करें तो वे हमें श्रीराम और वासन्ती के संवादों में हो सकते हैं। वासन्ती के कथनों में 'वाक्केली' स्पष्ट उदाहरण दृष्टव्य है। यह 'वाक्केली' दो प्रकार की कही गई है। प्रथम वाक्केली का लक्षण है कि—प्रसग-उपात्त विषय को कहते-कहते रुक जाना या उसको अपर और परिवर्तित कर देना। यथा कि दशरूपककार ने कहा है कि—

"विनिवृत्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ॥"
(दशरूपक, ३/१७)

वासन्ती, श्रीराम से सीता विषयक प्रश्न पूछती हुई कहती है कि—हे राम ! आप जिस सीता से कहा करते थे कि—तुम ही मेरा जीवन हो और सर्वस्व भी, तुम ही मेरा हृदय हो, तुम ही मेरी आँखों की चाँदनी हो और तुम मेरे शरीर के लिये अमृतवत् हो, ऐसी उस सीता को इस प्रकार के सैकड़ों खुशामदी बातों से फुसलाकर उसकी यह दशा आपने कर डाली, जिसका की चित्रण भी करना उचित नहीं है। यथा अधोलिखित श्लोक में वर्णित है—

"त्वं जीवितं त्वमसि से हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां,
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥" ३/२६

सीता के वियोग में विरहाकुल राम का हृदय कष्टमग्न हो रहा है, श्रीराम की करुणावस्था पर तो पत्थर भी रुदन करने को बाध्य हो जाते हैं। गम्भीर स्वभाव वाले राम इस शोक को वहन करने में असमर्थ रहे, उनका धैर्य नष्ट हो गया। राम सीता को लक्ष्य करते हुये कहते हैं कि हे सीते ! मेरा हृदय फटा जा रहा है, शरीर के जोड़ शिथिल हो रहा है, मैं निरन्तर हृदय की अग्नि से जल रहा हूँ। ऐसा ही वर्णन कवि ने किया है—

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः ।
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ॥"

इस छायांक में महाकवि भवभूति ने तमसा द्वारा करुण रस के महत्व की उद्घोषणा करके स्व करुण रस की मान्यता विषयक विचार एवं सिद्धान्त इस श्लोक में प्रस्तुत किया है—

यथा—

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥" ३/४७

अर्थात् एकमात्र करुण रस ही है। एक करुण रस ही निमित्त भेद से पृथक्-पृथक् शृंगार हास्य आदि रसों में परिणत होता है यथा एक जलद ही भंवर रूप में और तरंग रूप आदि (वाष्प और बर्फ) के रूप में अनुभूत होता है वस्तुतः वह जल एक ही है। उसके तरंगादि भेद निमित्त मात्र हैं।

इस प्रकार उपरिलिखित वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि रसानुभूति भवभूति ने दाम्पत्य-प्रणय का आदर्श एवं सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करने वास्ते तथा करुण रस के यश के प्रतिपादन करने वास्ते अथवा अभीप्सित करुण रस की सफल अभिव्यक्ति करने के लिये ही छाया सीता या छायांक का वर्णन किया है। भवभूति ने इस छायांक में ब्याज से आदर्श दाम्पत्य-प्रणय और मानवीय अनुभूतियों का ममस्पर्शी एवं भावगम्य करुण रस का अद्वितीय वर्णन किया है अतः छायांक कवि की मौलिक एवं नवीन उपज है।

प्रश्न १३—उत्तररामचरित के आधार पर सिद्ध करो कि सीता एक आदर्श नायिका है।

अथवा

सीता का चरित्र-चित्रण कीजिये और बताइये कि वह आदर्श नायिका है।

सीता उत्तररामचरित नाटक की नायिका है। वह (सीता) पृथ्वी की कन्या एवं मिथलेश्वर जनक की पुत्री है। रसानुभूति भवभूति ने सीता का चरित्र-चित्रण एक आदर्श पत्नी, आदर्श माता एवं आदि शक्ति के रूप में किया। जानकी पावन और पतिव्रता धर्म की साक्षात् मूर्ति है। राम ने यहाँ

विवश होकर सीता का निर्वासन किया परन्तु लक्ष्मण से वार्तालाप करते समय राम कहते हैं कि वह इतनी पवित्र है यथा अग्नि और तीर्थोदक—

"उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ॥
तीर्थोदकं च वह्निश्च, नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।" १–१३

उपरिलिखित श्लोक से ही स्पष्ट हो जाता है कि—सीता अत्यन्त ही पवित्र है। सीता की पवित्रता के लिये अग्नि आदियों की क्या आवश्यकता हैं क्योंकि तीर्थोदक और वह्नि स्वयं शुद्ध होते हैं वे कभी भी अपर वस्तुओं से शुद्ध नहीं किये जाते हैं। ये ही स्वयं अन्य पदार्थों की अशुचिता को दूर करते हैं। उसी प्रकार सीता तो स्वयं ही शुद्ध है उससे तो अन्य पदार्थ पवित्र होते हैं अतः उसकी शुचिता के लिये अन्य उपकरणों की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार राम के मानस में जानकी की पवित्रता सम्बन्धी दृढ़ विश्वास है और लोकापवाद गिथ्या भ्रान्ति है और राम कहने लगते हैं कि—प्राकृतिक सुवासित युक्त पुष्प का शिर पर होना आवश्यक ही है। परन्तु सुरभित पुष्प का चरणों से मसलना तो विरुद्ध आचरणवत् प्रतीत होता है। अतः इसी प्रकार सीता की पावनता पर सन्देह व्यक्त करना तो उस पावनात्मक भू-सुता का अपमान करना है या पावनत्व के विपरीत आचार करना। यथा अधोलिखित श्लोक में राम ने स्पष्ट कहा है—

"नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा ।
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥" १/१४

जानकी का पावन चरित्र सीता के व्यवहारों की अपेक्षा राम के मुखारविन्द से अत्यधिक स्पष्टरूप से मुखरित हुआ है। श्री राम जी की सुदृढ़ धारणा थी कि सीता के कारण समग्र संसार पवित्र है और सीता के विषय में जनोक्तियाँ ही अपवित्र हैं। सीता के पातिव्रत धर्म से यह संसार अपने को पवित्र समझता है। परन्तु कष्ट का विषय यह है कि—वही जनकसुता लोकापवाद से अनाथ हुये स्वामी-विरहोत्पन्न नाना प्रकार के कष्टों से दुःखित हुई महान् कष्टों को भोगेगी। सीता तो इतनी पवित्र थी कि स्वयं अग्निदेव और महर्षि वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती भी उसका वर्णन करने में अपने आप को धन्य मानते हैं सीता श्रीराम की धर्मपत्नी है, आदर्श राजमहिष है। राम से पृथक् रहकर भी उसके मानस में राम की आकृति क्षण भर के लिये भी अलग नहीं होती है।

सीता अपने प्राण प्रिय पति की अनुचर है वह कठोर कष्ट कण्टकाकीर्ण जंगलों में भी राम के ही साथ रहती है, सीता मितभाषी है वह अपने प्राण-प्रिय को गृह लक्ष्मी हैं जैसा कि अधोलिखित श्लोक से ही स्पष्ट होता है—

"इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो।
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ॥" १/३८

प्रस्तुत श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि—जानकी राम की प्राण-प्रिया है, राम के नेत्रों की अमृत-वर्तिका है श्रीराम के वास्ते जानकी के वपु का स्पर्श प्रगाढ़-मलयज रस के सादृश शीतल है। यह जानकी राघव का हृदय है तथा राघव के नेत्रों का ज्योति स्वरूप है।

• सीता का पतिव्रतत्व एवं आदर्शता—रसानुभूति भवभूति ने अपने इस उत्तररामचरित में सीता का चरित्र एक आदर्श पतिव्रता नारी के श्रेष्ठ गुणों से अलंकृति करके वर्णित किया है। जानकी के जीवन का करुण वर्णन ही इस नाटक में वर्णित है। सीता के हृदय में बिना किसी कारण ही निर्वासन से उत्पन्न कष्ट का आवेश अवश्य है किन्तु जिस समय पञ्चवटी में वासन्ती राम को सीता के निर्वास विषयक उलाहना देती है तो उस समय जानकी 'छाया-सीता' के रूप में स्थित प्रसन्नता का अनुभव नहीं करती है, अपितु श्रीराम की करुणा पर सहानुभूति अभिव्यक्त करती है। जब श्रीराम सीता के साथ वनवास के परिचित स्थानों को देखते हैं तो उनका विरह अति दारुण हो जाता है और चेतनाशून्य हो जाता है। तब सीता अपने करतल स्पर्श से राम की अचेतनता को दूर कर चैतन्य प्रदान करती है सीता राम को परमपिता की भाँति मान्य एवं श्रद्धेय मानती है। दण्डक वन में सीता रामचन्द्र के सहसा दर्शन प्राप्त करके अपने श्रद्धेय भाव को अभिव्यक्त करती हुई कहती है—

"नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।"

डॉ० कीथ ने भवभूति के पात्रों के चरित्र-त्रित्रण विषयक अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुये कहा है कि—"दुष्यन्त और उसकी तपोवन प्रेयसी की अपेक्षा श्रीराम और सीता अधिक मार्मिक जीवन तथा गहनतर अनुभूति के प्राणी हैं।"

उपरि विवेचन से यह निश्चय होता है कि—इस उत्तररामचरित में सीता का चित्रित चरित्र गम्भीर एवं आदर्श नारी के गुणों से अलंकृत, गृह लक्ष्मी,

आदर्श पत्नी, आदर्श मां, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति, स्नेह की चमरमयी भावुक और सुकुमार हृदया नायिका है। सीता का वर्णित करुण चित्र दर्शकों एवं पाठकों के चित्त में करुण एवं श्रद्धा की तरंगें तरंगित कर रहा है। वास्तविकता यह है कि—सीता भारतीय आदर्श नारी के श्रेष्ठतम गुणों से युक्त श्रीराम की प्राण-वल्लभा एवं पवित्र चरित्रा है जिसका पवित्रता का प्रमाण तीनों लोक के सम्भ्रान्त नगरवासी, देव, ऋषि, गन्धर्व एवं मुनिजन तथा जनता आदि हैं रसानुभूति भवभूति ने राम और सीता के चित्रण के व्याज से समग्र करुणा को ही करुण रस में बांधकर उढ़ेल दिया है। उस उडेलने में भी अपना अद्वितीय नाट्य-कौशल प्रदर्शित किया है।

प्रश्न १४—नाटकीय तत्वों के आधार पर भवभूतिकृत 'उत्तररामचरित' की समीक्षा कीजिये ?

अथवा

भवभूति के उत्तररामचरित के गुण-दोषों को ध्यान में रखते हुए, उसकी समीक्षा कीजिये।

उत्तर—भवभूति विरचित उत्तररामचरित की समीक्षा करते हुए वरदाचार्य ने कहा है कि—यह नाटक की अपेक्षा नाट्य गुणों से युक्त एक काव्य अधिक है। इसी विचार को भी वरदाचार्य इस प्रकार कहते हैं कि—

"नाटक के दृष्टिकोण से यह उच्चकोटि का नहीं है किन्तु उनमें जंगलों का चित्रण तथा श्रीराम और जानकी की विरह-व्यञ्जना अत्यन्त प्रशंसनीय और सुसंस्कृत साहित्य में अतुलनीय है। उत्तररामचरित में सहृदय की दृष्टि से गीति का महत्वपूर्ण स्वरूप मिलता है। अत्यधिक भावुकता के कारण कहीं कहीं नाट्य-व्यापार अवरुद्ध सा प्रतीत होता है और भावपूर्ण दृश्य गीति-नाट्य जैसे दृष्टिगोचर होते हैं। पात्रों के अत्यधिक भावुकतावश बार-बार मूर्छित होने में सामाजिकों को कुछ अस्वाभाविकता सी प्रतीत होती है, किन्तु ये सब त्रुटियाँ होते हुये भी भवभूति ने इस नाटक की उत्तम वस्तु-योजना की है।"

उत्तररामचरित के वर्णन को देखकर डॉ० विल्सन भी चुप न रह सके और बाध्य होकर कहना ही पड़ा-इस नाटक में बहुत कम घटनाओं का वर्णन किया गया है, वे भी अकस्मात् प्रस्तुत की गई हैं, उनमें समय और स्थान की

दूरी से भेद किया है। ये घटनायें नाटकीय सम्भावनाओं पर आघात करके कथा के प्रवाह में बाधक हैं।

डॉ० कीथ ने भी कहा है कि—"नाटक के रूप में उत्तररामचरित उच्चतर स्तर तक नहीं पहुँचता।" परन्तु भली भाँति समीक्षा करने पर ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि—भवभूति के समग्र नाटक अभिनेयता के दृष्टिकोण के सफल अभिनेय करने योग्य है। आपके सभी नाटकों का अभिनय कालप्रियनाथ शंकर के मन्दिर के सामने हो चुका था। वह अभिनय भवभूति के जीवन काल में ही सम्पन्न हो चुका था। बस···! यह आवश्यक है कि आपके नाटकों का अभिनय करने वाले और दर्शक दोनों ही सहृदय और विद्वान् होने चाहिये। भवभूति एक सर्वोच्च कवि हैं और साथ ही साथ प्रकृष्ट कोटि के नाटककार भी। म० प० काणे महोदय ने इस नाटक की सर्वोच्चता की उद्घोषणा करते हुए कहा है कि—"संस्कृत नाट्य तथा काव्य साहित्य के नक्षत्रों के मण्डल में भवभूति सर्वाधिक देदीप्यमान नक्षत्रों में से एक है।" उत्तररामचरित भवभूति का अमर नाटक सफल एवं श्रेष्ठ नाटक तो है ही, साथ ही साथ संस्कृत नाट्य साहित्य एवं संस्कृत काव्यों में इसका विशिष्ट स्थान है। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुये कुछ साहित्य समालोचकों ने कहा है कि—

"उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

उत्तररामचरित के प्रणेता भवभूति के नाट्य-साहित्य की श्रेष्ठता अभिव्यञ्जित हो रही है कि—भवभूति अन्य कवियों की अपेक्षा इस नाटक में बहुत आगे बढ़ गये। नाट्य के दृष्टिकोण से विवेचना करने से अनुभूति होती है कि—कतिपय दोषों की प्राप्ति अवश्य होती है कि—जो समालोचकों की दृष्टि में एक सफल नाटक में होने चाहिये। इस नाटक में प्राप्त दोषों का विवेचन निम्नलिखित हैं—

भवभूतिकृत उत्तररामचरित के कथानक में समय तथा स्थान कार्य की अन्विति का अभाव दृष्टिगोचर होने के कारण असंबद्धता अवश्य ही उपस्थित हो जाती है। इस सम्बन्ध में डॉ० गंगासागर राय ने अपने सुप्रसिद्ध नाटकों की आलोचना करने के मध्य में लिखा है—"संस्कृत नाटककार इन अन्वितियों के पालन में बहुत सतर्क दिखाई नहीं पड़ते। जहाँ तक काल या समय की

अन्विति का प्रश्न है, वे इतने सीमित समय में घटना-चक्र को समाप्त करने के पक्ष में नहीं और जब काल की अन्विति सीमित नहीं हुई।"

इस नाटक उत्तररामचरित में प्रवाहित कारुण्य की उत्ताल तरंगों में सामाजिक डूबने उतराने लगता है। वास्तव में भवभूति की अन्तर्भावना को ध्यान में रखकर यही आलोचना करें तो उपर्युक्त दोष, भावों का चित्रण प्रस्तुत करना और करुण रस की सफल व्यञ्जना में हास्य के वर्णन का अभाव चित्रित करना, नाटककार का गाम्भीर्य एवं उसकी आदर्शप्रियता का सफल वर्णन है। इस नाटक के प्रायः सभी पात्र सहृदय एवं भावुक हैं अतः नाटककार ने पात्रों की भावना के अनुरूप उनके भावों का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है।

उत्तररामचरित नाटक के पात्रों की वैयक्तिक भावना तथा अभिरुचि का वर्णन बड़े ही कौशल के साथ नाट्य परिवेश में किया गया है। भवभूति ने नदियों का मानवीकरण का स्वरूप एवं उदात्त भावुकता का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें तमसा, गोदावरी, मुरला और गंगा हैं। पृथ्वी के सभ्य प्राणी मनुष्यों की खुशियों में सुरगण भी प्रसन्न होते हैं। भवभूति के पात्र दिव्य भी स्पष्ट, सरस एवं भावपूर्ण भाषा में स्वभावों को अभिव्यक्त करते हैं।

कुछ साहित्य समालोचकों का यह मत है कि—उत्तररामचरित नाटक का रचनाक्रम सफल नाटक के योग्य नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि इसमें वर्णन की कृत्रिमता, प्रौढ़ता और समास वाहुल्यदीर्घ वाक्य-विन्यास युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है। जो अभिनेयता की दृष्टि से उचित नहीं है। कालिदास के सदृश सरल एवं वास्तविक सुकुमार एवं लालित्यमय पदावली का प्रयोग किया गया है। परन्तु इन सभी बातों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमें कालिदास की भाँति मनोहर वैदर्भी रीति का अभाव है उसके स्थान पर ओज-गुण युक्त समास बहुल भाषा का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम नाटककार भास के सदृश सरल, समास विहीन, स्वाभाविक ललालित्यमय पदावली का भी उत्तररामचरित में अभाव प्रतीत होता है। यद्यपि भवभूति के नाटकों में विशेष रूप से उत्तररामचरित में पूर्ण विद्वत्ता एवं अद्वितीय मेधा का परिचय

पद-पद पर मिलता है परन्तु अभिनेयता एवं सफल नाटकीयता का अभाव प्रतीत होता है ।

भवभूति की भाषा-शैली की यह विशेषता है कि स्थान और कार्य की अन्विति के लिये स्वयं ही विस्तार एवं व्यापक स्थान मिल जाता है । कविकुल गुरु कालिदास द्वारा प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में दुष्यन्त और शकुन्तला के परिचय से लेकर पुत्र की उत्पत्ति एवं क्रीड़ा दशा तक का समय लेते हैं । दृश्य भी जंगल प्रान्त से लेकर दुष्यन्त की राजधानी, स्वर्ग तथा पर्वतों तक व्याप्त है । यह आवश्यक है कि स्वर्ग में प्रस्थान के लिये इन्द्र-प्रेषित विमान का आश्रय लेते हैं । इसी प्रकार भास का नाटक "स्वप्नवासवदत्तम्" भी केवल एक ही दिन से सम्बद्ध नहीं है । लावाणक ग्राम के प्रदाह से पद्मावती-परिणय एवं आरुणि विजय तक की घटनायें और उसमें प्रसंगानुकूल घटनायें आई हुई हैं । 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भी दशा है अन्य नाटकों में भी ऐसे उदाहरण दृष्टि-गोचर नहीं होते हैं । अतः हम देखते हैं । कि संस्कृत के नाटकों में कालान्वित तथा तत्परिणाम स्वरूप स्थानान्विति में कुछ विस्तार प्रतीत होता है । प्रथम अथवा द्वितीय अङ्क के मध्यम में १२ वर्ष का दीर्घकाल का वर्णन है द्वितीयाङ्क के पश्चात्वर्ती घटनायें अत्यन्त त्वरित गति से घटित होती हैं इस प्रकार यह नाटक स्थान व काल की दृष्टि से शिथिल जान पड़ता है। कार्यान्विति की दृष्टि से भी नाटक में शिथिलता की कमी नहीं है । वासन्ती के कथोपकथन से तो भवभूति का कवित्व तो झलकता है परन्तु नाटक में सौकर्य में अभिवृद्धि नहीं होती । समालोचकों का यह भी कथन है कि नाटक में चतुर्थ अङ्क की कथा को निकाल दिया जावे तो नाटक का कथानक और फल प्राप्ति में कोई अन्तर नहीं होगा ।,

उत्तररामचरित के समग्र पात्र दिव्य होने के कारण गम्भीर स्वभाव वाले से प्रतीत होते हैं । इसमें पात्रों की विभिजता का अभाव सा प्रतीत होता है । इन पात्रों में सदसत् का द्वन्द्व नहीं मिलता है । अतः पाठक पथिकों एवं दर्शकों के हृदय में कौतुक की अभिवृद्धि नहीं होती है इस नाटक में पात्रों का गाम्भीर्य एवं दिव्य गुण युक्त होने के कारण तथा विविधता के अभाव के कारण सामाजिक ऊब से जाते हैं । इसके अलावा भवभूति ने इसमें विदूषक पात्र की योजना नहीं

की, जिससे हास्य के प्रति विरक्ति स्पष्ट होती है। एक तरह तो हास्य तो नाटक की मनोरञ्जकता की आत्मा है। इस हास्य की कमी भी समालोचकों ने अनुभव की है। यही कारण है कि आपकी भाषा में प्रौढ़ता और उदारता का सफल मिश्रण मिलता है। भवभूति ने समयानुकूल उचित शब्दचयन करके चित्रणों की उत्कर्षता का स्पष्ट स्वरूप सामाजिकों एवं पाठकों के सामने रखा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार था। अतः अद्वितीय शब्दावली का उत्कृट रूप नाटक के द्वारा स्पष्ट किया है। समयानुकारिणी भाषा को प्रयुक्त करने में सिद्धहस्त हैं यही कारण है जिससे कि प्रकृति के भयङ्कर तप के उग्र स्वरूप का वर्णन करके ओजगुण प्रधान वाणी, समास बाहुल्य तथा क्लिष्ट पदावली भाषा का प्रयोग किया गया है। यही नहीं साथ ही साथ सुकोमल चित्रणों के प्रसङ्ग में सरल, सरस एवं लालित्य और समास विहीन पदावली का प्रयोग भी बड़ी वास्तविकता के साथ किया है। तीव्रगामी मनोभावों को स्पष्ट करने के अवसर पर 'वैदर्भी रीति' हृदय ग्राही रूप का वर्णन करते हुये चित्रण करते हैं यथा—वासन्ती के हृदय में जानकी के त्यागोत्पन्न दुःख पूर्ण अभिव्यक्ति का स्पष्ट वर्णन करने के वास्ते उलाहना को आधार लेकर वासन्ती ने राम से कहलवाया है—

"त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां,
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥ ३/२६

हे राम! आप जिस सीता के सम्बन्ध में कहा करते थे कि—तुम मेरे प्राण हो, तुम ही मेरा हृदय और आँखों की स्थिति हो, और मेरे अङ्गों में अमृतवत् हो। इस प्रकार विविध प्रिय वचनों से उस मुग्धा एवं सौम्य हृदया जानकी को अपने वशीभूत करके, उसी को समाप्त कर दिया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि—सीता के विषय में अधिक कुछ कहने से क्या लाभ। जब वह सीता ही जीवित नहीं है तो सब ही व्यर्थ है।

महाकवि भवभूति ने अपनी भाषा शैली के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि—भाषा की प्रौढ़ता, व्यञ्जना की उदारता और अर्थ की गम्भीरता

को विद्वता का तथा विदग्धता का प्रतीक मानना चाहिये। जैसा कि भवभूति ने अधोलिखित श्लोक में कहा है।

"यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थस्य च गौरवम्।
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्य वैदग्ध्योः॥"

उपरिलिखित विवेचन से यदि हम भवभूति की रचना शैली का परीक्षण करें तो उनकी भाषा-शैली की प्रौढ़ता, व्यञ्जना की उदारता और गम्भीरता का सफल निर्वाह हुआ है। भवभूति सच्चे अर्थों में नाटककार और कवि की समग्र विशेषतायें मिलती हैं—यथा प्रकृष्ट कल्पना शक्ति उदात्त और सुन्दरता का मूल्यांकन, चरित्र सम्बन्धी महान् क्षमता, मनोस्थिति विभिन्न स्थितियाँ एवं उन परिस्थितियों में होने वाला ज्ञान तथा अतुलनीय अनुकूल वर्णन की शक्ति के दर्शन प्राप्त होते हैं। उनके विचार महान हैं उनके शब्द भावना की अभिव्यक्ति से पूर्ण समर्थ हैं। आपके काव्य में वर्णन बहुत आनन्ददायक है और आपका भाषा पर अद्वितीय अधिकार है तथा वह वशीभूत होकर आपके अधीन है यथा उत्तररामचरित और महावीरचरित में स्वयं भवभूति ही कहते हैं—

"यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥" १—२

(उत्तररामचरित प्रथमाङ्क ४ श्लोक)

"वश्यवाच कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा।"

(महावीरचरित प्रथमाङ्क ४ श्लोक) ●

व्याख्या—भाग

स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः॥ १—७

प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्र के राजतिलक में आये हुये महाराज जनक जी के मिथिला वापस चले जाने पर पितृ-विरह से शोकाकुल सीता को सान्त्वना देने के लिये श्री रामचन्द्र जी न्याय सिंहासन से उठकर निवासकक्ष (रनिवास) में प्रवेश कर रहे हैं।

शब्दार्थ—स्नेहात् = स्नेह पूर्वक, समाजयितुम् = सम्मान (स्वागत) करने के लिये, एत्य = आकर, अमूनि = इतने, दिनानि = दिन, उत्सवेन = आनन्द पूर्वक, नीत्वा = व्यतीत करके, विदेहान् = मिथिया को, गतः = चले गये हैं, ततः = इसके पश्चात्, पिता जी राजा जनक के लौट जाने पर, विमनसः = अन्यमनस्क, दुःखिनी, शोकाकुल, देव्याः = महारानी सीता को, परिसान्त्वनाय = सान्त्वना देने के लिये, नरेन्द्रः = राजा, श्री रामचन्द्र, धर्मासनात् = धर्म (न्याय) सिंहासन से, वासगृहम् = अन्तःपुर में, विशति = प्रवेश कर रहे हैं।

व्याख्यार्थ—श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक का प्रेम-पूर्वक स्वागत करने के लिये आये हुये महाराज जनक जी आज इतने दिनों तक रहकर, (इतने दिन आनन्द के साथ व्यतीत करके) अपने विदेह देश को (मिथिला को) लौट गये हैं (चले गये हैं)। महाराज जनक जी (पिताजी) के मिथिला चले जाने पर उनके वियोग से (पितृ-विरह से) दुःखिनी देवी (महारानी सीता) को सान्त्वना देने के लिये महाराज रामचन्द्र जी धर्मासन से अर्थात् न्याय सिंहासन से उठकर अन्तःपुर (रनिवास) में प्रवेश कर रहे हैं।

नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना के द्वारा सामाजिकों की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये ही भवभूति ने प्रस्तुत श्लोक के द्वारा सूचित किया है कि—इस समय श्री रामचन्द्र जी रनिवास की ओर सीता को सान्त्वना देने जा रहे हैं। पिता के चले जाने पर पुत्री का शोकाकुल होना स्वाभाविक ही है तथा आदर्श पति को अपनी प्रिय पत्नी के दुःखों के समनार्थ प्रयास करना चाहिये। अंतः श्री रामचन्द्रजी न्याय सिंहासन से उठकर सीधे सीता के भवन में प्रवेश कर रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलङ्कार है तथा वसन्ततिलका छन्द है। वहाँ 'धर्नासनात्' शब्द से श्री रामचन्द्र जी आदर्श शासकत्व की अभिव्यञ्जना हो रही है।

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि ? पार्थिवानां,
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥ १—९

शब्दार्थ—विश्वम्भरा = वि वं भरतीति = विश्वम्भरा = पृथ्वी, भवतीम् आपको, सीता को, असत = उत्पन्न किया है, प्रजापतिसमः = ब्रह्मा के समान, पार्थिवानाम् = राजाओं की, वधू = कुलवधू, असि = हो, सविता = सूर्य, √सूञ + तृच् तृ, (इट्) का आगम (इ) गुण अत्यादि सन्धि) = सविता (प्रथमा एकवचन)।

प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्र के समीप गुरु वशिष्ठ ने अष्टावक्र को सन्देश देकर भेजा था—अष्टावक्र अयोध्या आकर वशिष्ठ के सन्देश को सीता राम के समक्ष सीता को सम्बोधित करते हुये वशिष्ठ के शब्दों को कहता है कि—

व्याख्यार्थ—समस्त संसार का भरण एवं पोषण करने वाली पृथ्वी ने आपको (सीता को) उत्पन्न किया है। जगत्सृष्टा, ब्रह्मा के समान राजा जनक जी तुम्हारे पिता हैं और हे आनन्द स्वरूप सीते ! तुम राजाओं के वंश की कुलवधू हो, जिनके वंश में सूर्यदेव तथा हम (वशिष्ठ) गुरु हैं अर्थात् मातृ-पितृ की ओर से पृथ्वी और महाराज जनक, श्वसुर पक्ष की ओर से सूर्य देव और गुरु पक्ष की ओर से हमारे (वशिष्ठ के) आशीर्वाद तुम्हें सदैव साफल्य प्रदान करें।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में, उपमा, समुच्चय तथा पुनरुक्तवदाभास अलंकारों के क्षीर नीर न्याय से "संकर" अलंकार की छटा दर्शनीय है तथा वसन्ततिलका छन्द है। जनक की तुलना ब्रह्मा से दी है जिससे जनक की विदेहता व्यक्त हो रही है। विश्वम्भरा (विश्व का भरण-पोषण करने वाली क्षमा की मूर्ति पृथ्वी माता है और संसार को प्रकाश प्रदान करने वाला सूर्य देव श्वसुर कुल के जनक (उत्पन्न कर्ता)। तपोनिधि हम वशिष्ठ गुरु (कुल गुरु) हैं। इससे वशिष्ठ की सर्वज्ञता, महनीयता अभिव्यक्त होती है। सीता के जीवन में आने वाली विषम स्थितियों का संकेत भी प्राप्त हो जाता हैं। अतः हे सीता तुम्हें कठोरतम कष्टों के सहन करने के लिये तैयार रहना चाहिये, यह भी अभिव्यञ्जित हो रहा है।

> क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयः,
> तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
> नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा,
> मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥ १–१४

शब्दार्थ—क्लिष्टः = दुःखी, जनैः = लोगों के द्वारा, अनुरञ्जनीय – मनोरंजन करना चाहिये, किल – निश्चय ही, ते = तुम्हारे लिये, न = हमने, यत् = जो, अशुभम् = अनुचित, उक्तम् – कहा है, न क्षमम् = योग्य नहीं है, उचित नहीं है, सुरभिणः = सुगन्धित, कुसुमस्य पुष्प की, मूर्ध्नि शिरा में, स्थिति = निवास या रखना, नैसर्गिकी = स्वाभाविक, उचित, योग्य, सिद्धा सिद्ध है, चरणैः = पैरों से, अवताडनानि = कुचलना, न = नहीं (उचित है)।

प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्र जी सीता से कह रहे हैं—कि यज्ञभूमि से उत्पन्न हे देवि ! आप प्रसन्न हो जायें यह अपराध तो आपके जीवन भर के लिये हैं।

व्याख्यार्थ—दुःखी (सन्तप्त एवं पीड़ित) व्यक्ति का उसके सम्बन्धी लोगों के द्वारा मनोरंजन करना चाहिये। किन्तु जो कुछ तुम्हारे विषय में हमने अनुचित कहा है, वह सब तुम्हारे लिये उचित नहीं है, क्योंकि सुगन्धित पुष्प को शिर पर धारण करना स्वभावसिद्ध एवं उचित है इसके विपरीत सुगन्धित पुष्पों को चरणों से कुचलना उचित नहीं है।

विशेष—इस श्लोक के दृष्टान्त अलंकार है और प्रसाद गुण है। इससे सीता की उत्कृष्टता चारित्रिक पवित्रता ध्वनित होती है तथा सीता का चरित्र पुष्प की स्वाभाविक सुगन्धि के समान परम पवित्र एवं सम्माननीय है :

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः,
दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतुहलमङ्गकैः॥ १–२०

शब्दार्थ—प्रतनुविरलैः = अत्यन्त छोटे-छोटे कहीं-कहीं बहुत कम थोड़े ही (दांत निकले थे) प्रान्तोन्मीलनमनोहरकुन्तलैः = फूलों की सुन्दर कलियों के समान सुन्दर दाँतों तथा कपोलों पर सुशोभित होने वाले काले-काले घुंघराले वालों से, दशनकुसुमैः = फूलों के समान दाँतों से, मुग्धलोकम् = भोले-भोले सरल मुख को, दधती = धारण करती हुई, ललितललितः = अत्यन्त कमनीय,

ज्योत्स्नाप्रायैः = चन्द्रमा की चाँदनी के समान, अत्यन्त कमनीय गौरवर्ण अंगों से अकृत्रिमविभ्रमैः = सजावट के विना स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त, अङ्गकैः = छोटे-छोटे अंगों से, मे = मेरी, अम्बानाम् = माताओं को, कुतूहलम् = आश्चर्य, अकृत = उत्पन्न किया करती थी।

प्रसङ्ग—चित्र दर्शन के प्रसङ्ग में राम सीता, के चित्र को देखकर कहते हैं कि यह सीता भी उस समय (जब विवाह के समय जनकपुरी से अयोध्या आई थी) तो उस समय—

व्याख्यार्थ—छोटे-छोटे कहीं-कहीं कुसुम की कलियों के समान सुन्दर दाँतों तथा कपोलों पर सुशोभित होने वाले मनोहर काले-काले घुंघराले बालों से कमनीय एवं भोले-भोले सरल मुख को धारण करती हुई, थोड़ी आयु (उम्र) वाली अत्यन्त सुन्दर चन्द्रमा की चादनी के समान सुन्दर गौरवर्ण वाली स्वाभाविक विलासों से युक्त अपने छोटे-छोटे अंगों से मेरी माताओं (कौशल्या सुमित्रा और केकैयी) को कौतूहल (आश्चर्य) उत्पन्न करती थी।

विशेष—इस श्लोक में उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है। हरिणी छन्द है। प्रतनुविरलैः से यह स्पष्ट होता है कि विवाह के समय तक सीता के पूरे दाँत नहीं निकल पाये थे। बाल्मीकि रामायण में सीता की आयु विवाह के समय ३ वर्ष की थी। जैसा कि सीता ने रावण से स्वयं कहा है कि—

"उषित्वा द्वादशसमा ईक्ष्वाकूणां निवेशने,
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥

प्रस्तुत श्लोक में श्री रामचन्द्र जी ने सीता की बाल्यावस्था का अतीव रमणीय एवं हृदयावर्जक वर्णन किया है। इससे सीता के सारल्य एवं मौग्ध्य भाव की अतिशयिता अभिव्यञ्जित होती है।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥ १-२३

शब्दार्थ—हे भगवति? = हे ऐश्वर्यशालिनि! देवि! भगीरथ = भगीरथ नामक इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा ने, अगणिततनूतापः = असंख्य शरीर के कष्टों को न गिनते हुये, तपांसि = तपस्याओं को, तप्त्वा = करके, तव = तुम्हारे

गंगा जी के, अद्भिः = जलों के, स्पृष्टान् = स्पर्श को प्राप्त हुये, सगराध्वरे = राजा सगर के यज्ञ में, तुरगविचयव्यग्रान् = घोड़ों को खोजने में व्याकुल, उर्वीभिदः पृथ्वी खोदने वाले, रोषात् = क्रोध से, कपिलमहसा = कपिल मुनि तेजानल से, प्लुष्टान् = भस्म हुये, पितु = पिता के (दिलीप के), पितामहान् = सगर के पुत्रों को (बाबा दादा लोगों को), चिरात् = बहुत समय में, उदतीतरत् = उद्धार किया था, पार किया था।

प्रसङ्ग—चित्र दर्शन के समय श्री रामचन्द्र जी गंगा जी के चित्र को देखकर कहते हैं कि—हे रघुकुल की देवि ! गंगा जी आपको नमस्ते हैं—

व्याख्यार्थ—हे भगवति ! गंगे ! असंख्य शरीर के कष्टों को न गिनते हुये अनेक तपस्याओं को करके तुम्हारे जलों के स्पर्श से राजा सगर के अश्वमेध नामक यज्ञ में (अश्वमेध यज्ञ के) घोड़े को खोजने में व्याकुल, पृथ्वी खोदने वाले कपिल मुनि के क्रोधानल से भस्म हुये, पिता के अर्थात् दिलीप के भी पितामह (सगर के पुत्रों को) बहुत समय के पश्चात् उद्धार किया था।

विशेष—इस श्लोक में उदात्त अलंकार है तथा हरिणी छन्द और ओज गुण है। इसमे गंगा जी के जल की परम पवित्रता एवम् जल की असाधारण तारकत्व शक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥ १–२७

शब्दार्थ—आसक्तियोगात् परस्पर अत्यन्त प्रेम के सम्बन्ध से, किमपि = कुछ, यौं ही, मन्दं मन्दम् धीरे-धीरे, अविरलितकपोलम् कपोल से कपोल मिलाकर, अक्रमेण = विना क्रम से, जल्पतोः = बातें करते हुये, अशिथिल परिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः = निरन्तर आलिंगनपाश में एक, एक हाथ व्याप्त हम दोनों की, अविदितगतयामा = रात्रि के बीतने वाले प्रहरों का भी पता नहीं लगता था ऐसी, रात्रिरेव = रात की रातें, व्यरसीत् = बीत जाती थीं।

प्रसङ्ग—चित्र दर्शन के समय "प्रस्रवण" नामक पर्वत को देखकर श्री रामचन्द्र जी सीता से कहते हैं कि—क्या तुम्हें स्मरण है कि—वनवास के समय हम दोनों के समय किस प्रकार बीतते थे—

व्याख्यार्थ—जिस दण्डकारण्य में परस्पर कपोल से कपोल सटाकर और एक दूसरे को हाथों के दृढ़ आलिंगन पाश में बांधकर धीरे-धीरे यों ही इधर

उधर की अर्थहीन वार्तालाप करते हुये रात के पहरों का बीतना भी ज्ञात नहीं होता था और हम दोनों की रात की रातें अर्थात् सारी रात बीत जाती थी। (क्या वह समय तुम्हें स्मरण है)।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलङ्कार है और माधुर्य गुण, तथा मालिनी छन्द है। इस श्लोक में दाम्पत्य जीवन का मर्यादित संयोग श्रृङ्गार का कमनीय वर्णन किया गया है। दाम्पत्य जीवन का अनुभूत एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

अथेवं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तया वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्य चरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्॥ १-२८

शब्दार्थ—अथ - इसके बाद, पापैः = पापी, रक्षोभिः = राक्षसों ने; कनकहरिणछद्मविधिना = सोने के मृग के छल से, इदम् = यह, तया वृत्तम् = उस प्रकार दुष्कम, पापकर्म किया, क्षालितमपि = नष्ट करने पर भी, बदला ले लेने पर भी, विकलयति = व्याकुल कर रहा है, शून्ये = जनरहित, जनस्थाने = दण्डकारण्य में, विकलकरणै = व्याकुल इन्द्रियों वाले, आर्यचरितै = आर्य के चरित्रों से, ग्रावा अपि = पत्थर भी, रोदति = रो रहा है, वज्रस्यापि = वज्र का भी, हृदयम् = हृदय, दलति = फट रहा है, टुकड़े-टुकड़े हो रहा है।

प्रसङ्ग—दण्डकारण्य का चित्र देखकर रामचन्द्र जी कहते हैं कि—मुझे जनस्थान का वृत्तान्त वर्तमान सा प्रतीत हो रहा है। पुनः लक्ष्मण चित्र दिखाता हुआ कहता है कि—

व्याख्याऽर्थ—लक्ष्मण राम से कहता है कि—उसके बाद पापी राक्षसों ने सोने के हरिण के छल के उपाय से ऐसा दुष्कर्म किया जिसका बदला (रावणादि का वध करने पर भी) ले लेने पर भी हमको व्याकुल (व्यथित) कर रहा है। इस जनरहित सुनसान दण्डक वन में व्याकुल इन्द्रियों वाले आर्य के चित्रों से (सीता के विरहजन्य विलापों के द्वारा) पत्थर भी रोते थे और वज्र का भी हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता था।

विशेष—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है। इससे कवि के भाव ग्रहण की उत्कृष्टता तथा असाधारण कवि प्रातिभ्य ध्वनित होता है।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे शौनिके गृह शकुन्तिकामिव ॥ १-४५

शब्दार्थ—शैशवात् = बाल्यकाल से, प्रभृति = लेकर, पोषिताम् = पाली हुई, सौहृदात् = स्नेह के कारण, विश्वासवश, अपृथगाश्रयाम् = अलग न रहने वाली, साथ ही रहने वाली, अभिन्न, इमाम् = इस समीप स्थित सहधर्म-चारिणी, प्रियाम् = सीता को, शौनिके = वधिक व्याध को, गृहशकुन्तिकाम् इव = गृहपालित पक्षी के समान, छद्मना = कपट से, छल से, मृत्यवे = मृत्यु को, परिददामि = समर्पित कर रहा हूँ ।

प्रसङ्ग—सीता के सम्वन्ध में अग्नि परीक्षा पर जनता में विश्वास नहीं हैं यह दुर्मुख से सुनकर श्री रामचन्द्र जी सीता का परित्याग करने का निश्चय करके अपने ही मन में कहते हैं कि—मैं अतीव घृणित करने वाला क्रूर (दयाहीन) हो गया हूँ ।

व्याख्यार्थ—जिस प्रकार कोई बधिक (कसाई) बचपन से पाली हुई, पक्षी को घर में पालतू पक्षी को मौत को सौंप देता है । उसी प्रकार मैं (दयारहित घृणितकर्मा राम) भी बाल्यकाल से परिपालित, विश्वास के साथ सदा साथ रहने वाली (कभी अलग न रहने वाली) प्रिय सहधर्मचारिणा पाणिग्रहण-गृहीता पत्नी सीता को (गंगा स्नान के) छल से मृत्यु को अर्पित कर रहा हूँ ।

विशेष—इस श्लोक में उपमा अलङ्कार है तथा रथोद्धता छन्द है इससे राम का पश्चातापातिशय में एवं सीता की अभिन्नता एवं प्रेमातिशय की अतिशयिता अभिव्यक्त हो रही है ।

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा,
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम् ।
आतङ्कस्फुरितकठोर गर्भगुर्वीं,
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि ॥ १-४६

शब्दार्थ—विस्रम्भात् = विश्वास से, उरसि = वक्षःस्थल पर, निपत्य = गिरकर; जातनिद्राम् = निद्रा को प्राप्त, सोई हुई, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भाम् चित्र-दर्शन के आतंक से धड़कने वाले कठोर गर्भ के भार से युक्त, प्रियगृहि-

णीम् = प्रिय सहधर्मिणी, गृहलक्ष्मी को, दारुणः = कठोर एवं क्रूरकर्मा मैं, उन्मुच्य = अलग करके, क्रव्यादृभ्यः = हिंसक जीवों के लिये, बलिमिव = बलि के अन्न के समान, क्षिपामि = फेंक रहा हूँ।

प्रसङ्ग—रामचन्द्र जी अपनी क्रूरता और सीता की विषय दशा का वर्णन करते हुये सीता-परित्याग से पूर्व कह रहे हैं कि—

व्याख्यार्थ—विश्वास के साथ वक्षः-स्थल पर गिरकर सोती हुई, चित्र-दर्शन के भय से धड़कने वाले कठोर गर्भ के अत्यन्त भार से व्याकुल एवम् अलसाई हुई गृहलक्ष्मी प्रिय पाणिगृहीता पत्नी सीता को नृशंस कर्म करने वाला होता हुआ मैं (दयारहित) राम हृदय से अलग करके हिंसक जीवों के (सिंहादि के) लिये बलि के अन्न के समान फेंक रहा हूँ।

विशेष—राम के शब्दों में राम की क्रूरता की अतिशयिता ध्वनित होती है कि—इससे अधिक और नृशंसता क्या हो सकती है कि—गुणवती, धर्म पत्नी को हिंसक जीवों के लिये मांस के खण्ड के समान फेंक रहा हूँ यहाँ उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव तथा जड़े,
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा,
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादय ॥" २–४

शब्दार्थ—गुरुः = शिक्षक, अध्यापक, यथा = जिस प्रकार, प्राज्ञे = प्रकृष्ट बुद्धि वाले छात्र को, विद्याम् = विद्या, ज्ञान को, वितरति = देता है (और), तथैव = उसी प्रकार, जड़े = अल्पबुद्धि वाले (मूर्ख) छात्र को विद्या देता है, तयोः = उन दोनों के, ज्ञाने = ज्ञान में, शक्तिम् = शक्ति, योग्यता को, न करोति = न करता है, नहीं बढ़ाता है, वा = अथवा न, अपहन्ति = न कम करता है, खलु = निश्चय ही, परन्तु, फलं प्रति = परिणाम में, पुनः = फिर, भूयान = बहुत, भेदः = अन्तर, भवति = होता है, तत् = तो, यथा = जिस प्रकार, शुचिः = निर्मल, मणिः = मणि (शीशा) ही, बिम्बग्राहे = प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में, प्रभवति = समर्थ होती है, मृदादयः न = मिट्टी आदि नहीं।

प्रसङ्ग—आत्रेयी वाल्मीकि मुनि के आश्रम से दण्डक वन में आती हैं

और अपने अध्ययन के विघ्न का वर्णन करती हुई वन देवता से कहती है कि दो ऐसे अद्भुत प्रतिभाशाली छात्र आश्रम में रह रहे हैं, जिनकी तीव्र बुद्धि के समक्ष हमारे अध्ययन में विघ्न उपस्थित हो गया है, क्योंकि देखो—

व्याख्याऽर्थ—जिस प्रकार गुरु (अध्यापक, शिक्षक) बुद्धिमान् शिष्य को विद्या देता है उसी प्रकार मूर्ख शिष्य को विद्या प्रदान करता है। वह गुरु न तो उन दोनों शिष्यों के ज्ञान में वृद्धि करता है और न ही घटाता ही है। अपितु समान रूप से दोनों को शिक्षा देता है। फिर भी साथ-साथ पढ़ने वाले शिष्यों के परिणाम में अत्यन्त अन्तर हो जाता है। कोई छात्र स्वर्णपदक, प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी एवं अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। अतः यह निश्चित है कि निर्मल शुद्ध साफ मणि (शीशा) प्रतिविम्ब ग्रहण करने में समर्थ होती है मिट्टी आदि अन्य पदार्थ नहीं।

विशेष—इस श्लोक में उपमा तथा दृष्टान्त अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है, प्रसाद गुण तथा हरिणी छन्द है। इससे व्यक्ति की विशिष्ट योग्यता ही अन्य गुणों को ग्रहण करने में सफल होती है। इसी आशय को व्यक्त करते हुए कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि "क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।" व्यक्ति की योग्यता ही उसके शुभ-अशुभ, परिणामों का कारण होती है। यह स्पष्ट ध्वनित हो रहा है। ●

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे,
संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नमस्ते,
सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति ॥ २–११

शब्दार्थ—यमादपि = यमराज (मृत्यु से) भी, दत्ताभये = अभय प्रदान करने वाले, त्वयि = आपके, श्रीराम के, दण्डधारे = दण्ड-धारण करने पर, असौ = यह ब्राह्मण का, शिशुः = वालक, संजीवितः = जीवित कर दिया गया है, मम = मेरी, इयम् = यह, ऋद्धि = अनुपम शोभा, (हो गई), एषः = यह, शम्बूकः = शम्बूक नामक शूद्र, शिरसा = शिर से, नतः = नमस्कार, प्रणाम कर रहा है, (क्योंकि), सत्संगजानि = सज्जनों के सम्पर्क से (हाथों से) होने वाली, निधनानि = मृत्यु, अपि = भी, तारयन्ति = उद्धार कर देती है।

प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्र के वाण से शम्बूक नामक शूद्र शरीर त्याग कर देव शरीर को प्राप्त करके, श्री रामचन्द्र की जयकार करता हुआ कहता है कि—

व्याख्यार्थ—यमराज से भी अभयदान देने वाले आपके दण्ड धारण करने पर (आपकी कृपा से) यह ब्राह्मण का वालक जीवित हो गया है और मेरी यह अनुपम शोभा हो गई है। यह शम्बूक नामक शूद्र (मैं) आपके चरणों में सिर से (सिर झुकाकर) प्रणाम कर रहा है, यह कहना सर्वथा सत्य एवम् उचित ही है कि सत्संग से होने वाली मृत्यु भी अर्थात् सज्जनों के हाथों से होने वाली मृत्यु भी प्राणियों का उद्धार क॰ देती है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग एवम् अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। सत्संगति से प्राप्त मृत्यु भी सुख एवम् यश के लिये होती है। अतः सत्संगति की महिमा अनन्त है। यह ध्वनित हो रहा है तथा राम का सौजन्य अभिव्यक्त हो रहा है, जिनके हाथों से मरकर शम्बूक ने शापमुक्त होकर देवत्व को प्राप्ति कर लिया।

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्वि प्रलूनं,
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घ शोकः।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्या शरीरं,
शरदिज इव धर्मः केतकीगर्भपत्रम्॥ ३—५

शब्दार्थ—हृदयकमलशोषी=हृदय रूपी कमल को सुखाने वाला, दारुणः=भयंकर, दीर्घशोकः=दीर्घकालीन शोक, बन्धनात्=डंठल से, विप्रलूनम्=कटा हुआ, फटा हुआ, मुग्धम्=कोमल, किसलयमिव=नवीन कोमल पत्ते के समान, परिपाण्डु=पीले, क्षामम्=दुबले, अस्या=इस सीता के, शरीरम्=शरीर को, शरदिजः=शरद ऋतु में उत्पादन, घर्म=सूर्य की धूप, केतकीगर्भपत्रम् इव=केवड़े के भीतरी पत्ते के समान, ग्लपयति=गला देता है, सुखा देता है।

प्रसङ्ग—मुरला राम के दण्डक वन में आने की सूचना पाकर अगस्त्य का पत्नी लोपामुद्रा से राम के आगमन की सूचना देने के लिये सोच रही थी कि लव-कुश की १२वीं वर्षगांठ पर सूर्य को पुष्प-माला अर्पण करने के लिये गोदावरी नदी के जल से निकलती हुई सीता को देखकर कहती है कि निश्चित रूप से यह वही सीता है—

व्याख्यार्थ—हृदयरूपी कमल को सुखा देने वाला, भयंकर दीर्घकालीन (राम के विरह से उत्पन्न) शोक इस सीता के दुर्बल एवं पीले शरीर को वृक्ष की डाल से टूटे हुए नवीन कोपल पत्तों के साथ उसी प्रकार सुखा रहा है जिस प्रकार शरद ऋतु की भयंकर कठोर धूप से केवड़ें के भीतरी कोमल पत्ते को सुखा देता है, उसी प्रकार राम का विरहजन्य दीर्घकालीन शोक सीता के दुर्बल और पीले शरीर को सुखा रहा है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में रूपक और उपमा अलंकारों के योग से संकरालंकार है, मालिनी छन्द है, और माधुर्य गुण है। इससे सीता का विरहजन्य दीर्घकालीन शोक की अतिशयिता-व्यञ्जित होती है। विरहिणी सीता का यह चित्र सहृदयों के हृदय में करुण रस का उद्रेक अभिव्यंक्त कर रहा है।

भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः,
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं,
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि॥ ३-१९

शब्दार्थ—**भ्रमिषु**= चक्करों में, **कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः**=अन्दर-अन्दर चक्कर लगाने वाला, नेत्रों वाली, **प्रचलित चटुलभ्रूताण्डवैः**—चंचल तथा विलासयुक्त भौंहों के नर्तनों से, **मण्डयन्त्या**=सुशोभित करती हुई, **मुग्धया**=उस मुग्धा सीता द्वारा, **करकिसलयतालै**=हाथ रूपी कोंपल पत्तों की तालियों से, **नर्त्यमानं**=नचाये जाते हुए, **सुतमिव**=पुत्र के समान, **वत्सलेन**=वात्सल्य प्रेम से युक्त, **मनसा**=मन से, **स्मरामि**=मैं (राम) स्मरण कर रहा हूँ।

प्रसङ्ग—शम्बूक का वध करके श्रीरामचन्द्र जी वासन्ती के साथ परिचित दण्डकारण्य के भागों को देखते हुए सीता को स्मरण करके अपनी भयंकर विरह जन्य पीड़ा के वेग को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि देखो यह मयूर शिशु।

व्याख्यार्थ—(मोर) तुम्हारे चक्कर काट-काटकर घूमने पर अन्दर ही अन्दर तालियों को घुमाने वाली आँखों को चञ्चल तथा विलासपूर्वक भौंहों के नर्तनों से ही अलंकृत करती हुई उस मुग्धा सीता के द्वारा बजाई जाती हुई हाथ रूपी कोंपल पत्तों की तालियों से नचाये जाते हुए (तुम्हारे) पुत्र के समान प्रेमयुक्त मन से तुमको (मोर को) स्मरण कर रहा हूँ। अर्थात् हे मोर तुम्हारे

चक्कर काट-काटकर नाचने पर तुम्हारे नृत्य के समान ही उस सीता के नेत्र की पुतलियाँ अन्दर ही अन्दर नाचा करती थी। उस मेरी प्रिय पत्नी सीता के द्वारा कोंपल पत्ते के समान हाथों की तालियों से नचाये जाते हुये तुमको पुत्र के समान वात्सल्य प्रेम से मुक्त मन से मैं (श्री राम) याद कर रहा हूँ।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में रूपक तथा उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है, मालिनी छन्द है।

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलहष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा,
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ॥ ३–२८

शब्दार्थ—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलहष्टे=एक वर्ष के भयभीत मृग के वच्चे के समान चंचल नेत्रों वाली, परिस्फुटितगर्भरालसायाः=परिपूर्ण फड़कते हुये गर्भ के भार से अलसाई हुई, तस्याः=उस सीता के, मृदुबालमृणाल-कल्पा=कोमल एवं नवीन कमल के समान ज्योत्स्नामयी इव=चन्द्रमा की चाँदनी के समान चमकती हुई, अंगलतिका=अगों रूपी लता की, क्रव्याद्भि=हिंस्र जीवों द्वारा (सिंह आदि के द्वारा) नियतम्=निश्चय ही, विलुप्ता=नष्ट कर दी गई होगी।

प्रसंग—रामचन्द्र जी दण्डक वन के परिचित स्थानों को देखकर सीता को स्मरण करके वासन्ती से कहते हैं कि—हे सखि सीता के सम्वन्ध में क्या सोचना कि सीता की क्या स्थिति हुई होगी ? मेरी समझ में तो—

व्याख्याऽर्थ—एक वर्ष की आयु वाले भयभीत मृग के वच्चे के समान चंचल आँखों वाली, और परिपूर्ण फड़कते हुये गर्भ के भार से अलसाई हुई सीता की चन्द्र की चान्दनी के समान क्रान्तियुक्त नवीन मृणाल के समान कोमल (सीता के) अंगों की लता को निश्चय ही हिंसक जीवों ने (सिंहादि ने) नष्ट कर दिया होगा। अर्थात् मेरे द्वारा वन में परित्यक्त सीता को सिंह आदि खा गये होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिये।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है इससे सीता की करुण दशा और परिपूर्ण गर्भ के भार से भागने में असमर्थ परम सुन्दरी सीता अव इस लोक में नहीं रही होगी यह प्रतीत होता है। वसन्ततिलका छन्द है। सीता का सौन्दर्यातिशय अभिव्यंजित होता है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुदबुदतरंगमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥ ३-४७

शब्दार्थ—निमित्तभेदात्=निमित्त घटनाओं के भेद से, अथवा विभाव, अनुभाव आदि के भेद से, भिन्नः=अलग हुआ, पृथक्-पृथक्=भिन्न-भिन्न, विवर्तान्=रूपों को, आश्रयते=धारण कर लेता है, अम्भ=जल, आवर्तबुदबुद तरगंमयान्=भवंर बुलबुले लहर आदि रूप, विकारान्=विकारों को, आश्रयते=धारण करता है ।

प्रसंग—दण्डकारण्य में सीता राम का क्षणिक दर्शन प्राप्त करके वहाँ से जाना नहीं चाहती हैं और तमसा सीता को चलने को कहे तो कैसे कहे, तमसा कहती है कि—कैसी विचित्र घटना घटी ?

व्याख्यार्थ—करुण रस ही केवल प्रधान रस है। निमित्त एवं घटनाओं के भेद से अथवा विभाव, अनुभाव आदि के कारण यह करुण रस ही भिन्न रूपों को प्राप्त करता है। जिस प्रकार जल, भवंर, बुलबुले और लहरों का रूप धारण कर लेता है परन्तु सही रूप में वह जल एक ही है (इसीलिये तृतीय अङ्क में सीता के प्रति जो विभिन्न भाव अन्य पात्रों के हृदय में है वे लज्जा आश्चर्य आदि भाव तो केवल करुण रस के ही अवान्तर रूप हैं अथवा राम और सीता के जीवन से सम्बन्धित जो वीर एवं श्रृंगार रस से सम्बन्धित चित्र इस नाटक में प्राप्त होते हैं वे सभी चित्र एकमात्र करुण रस की अजस्र धारा से ही आप्लावित हैं। अर्थात् जिस प्रकार जल, भवंर बुलबुले, लहरों आदि अनेक रूपों में परिवर्तित हो जाता है परन्तु वह सब जल ही होता है वैसे ही सामाजिक के हृदय में रहने वाले विभिन्न भावनाओं के अनुसार विभावादि की विलक्षणता के करुण रस ही हैं।

अथवा—एक करुण रस ही निमित भेद से (सखि, पति, पत्नी) आदि के भेद से वासन्ती राम तथा सीता के रूप में अलग-अलग रूप अभिव्यक्त हो रहा है जिस प्रकार एक ही जल भवंर, बुलबुले, लहर आदि के रूप में एक जल ही होता है। उसी प्रकार श्रृंगार आदि रस एकमात्र करुण रस ही है। यद्यपि—राम के करुण में वासन्ती, तमसा के करुण रस में, सीता के करुण में भेद प्राप्त है परन्तु वह सब एकमात्र करुण ही है। अर्थात् इन सभी के हृदयों में एकमात्र करुण रस का ही संचार हो रहा है वस्तुतः इस नाटक में करुण

विप्रलम्भ शृंगार हैं अन्य रस तो केवल करुण विप्रलम्भ रस के ही विकार अथवा अवान्तर रूप हैं और कुछ नहीं।

शिशुर्वा शिष्या वा यदसिमम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धैरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्ति द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैण वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां,
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ॥ ४-११

शब्दार्थ—विशुद्धः=चारित्रिक शुद्धि का, उत्कर्ष=श्रेष्ठतर ही, मम= मेरी अरुन्धती के, भक्तिम्=श्रद्धाभाव का, द्रढयति=सुदृढ़ कर रहा है, शिशुत्वम्=वचपन, स्त्रैणम्=स्त्रीत्व, भवेत्=होवे, जगताम्=तीनों लोकों में, वन्द्या=वन्दनीया, असि=हो, गुणिषु=गुणी व्यक्तियों में, गुणाः=दया दाक्षिण्य, और उदारता आदि गुण ही, पूजास्थानम्=आदर सम्मान के पात्र होते हैं, न च=नहीं, लिंगम्=चिह्न, वेषभूषा, साजसज्जा आदि, न=नहीं, न च=नहीं, वयः आयु, उम्र नहीं।

प्रसंग—अरुन्धती वाल्मीकि के आश्रम में कौशल्या तथा राजा जनक के साथ सीता के सम्वन्ध में अपने पवित्र भावों को व्यक्त करती हुई कहती है कि—

व्याख्यार्थ—अरुन्धती कहती है कि—हे सीते! तुम मेरी शिशु अथवा शिष्या हो, जो कुछ भी हो वह सव वैसा ही रहने दो अर्थात् छोड़ो, तुम्हारी चारित्रिक पवित्रता का उत्कर्ष ही तुम्हारे में मेरी श्रद्धा को सुदृढ़ कर रहा है अर्थात् मैं तुम्हारे विशुद्ध चरित्र का विशेष सम्मान करती हूँ तुम चाहे शिशु हो, चाहे स्त्री हो अर्थात् तुम चाहे शिशु हो चाहे स्त्री हो, तुम तीनों लोकों के लिये वन्दनीय हो, क्योंकि गुण ही आदर (सम्मान) के स्थान होते हैं गुणी पुरुषों में शिशुत्व, स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि लक्षणों तथा अवस्था की आवश्यकता नहीं है अर्थात् सम्मान, (आदर) का स्थान चारित्रिक शुद्धता, दया दाक्षिण्य और उदारता आदि गुण ही श्रद्धा का विषय (स्थान) होते हैं। गुणी पुरुषों में स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि चिह्नों तथा अवस्था का आदर नहीं होता है। मैं तुम्हारे शिशुत्व एवम् स्त्रीत्व आदि का ध्यान न करके केवल चारित्रिक शुद्धता आदि गुणों के कारण ही तुम्हारे में श्रद्धा भाव रखती हूँ।

विशेष—इससे सीता की चारित्रिक शुद्धता की अतिशयिता अभिव्यंजित हो रही है। इस श्लोक में परिसंख्या तथा अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है तथा शिखरिणी छन्द है।

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृ तिघन,
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिादृष्टे किमिति परवानस्मि ? यदि वा,
महार्घस्तीर्थानायिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ।।६-११

शब्दार्थ—विरोध=शत्रुता का भाव, विश्रान्तः=समाप्त हो गया, निर्वृ-तिघन=अत्यन्त आनन्द, रस=प्रेम, प्रसरति=फैल रहा है (रोम-रोम में व्याप्व हो गया है)। औद्धत्यम्=उद्दण्डता का भाव, क्वापि=कहीं, व्रजति=चला गया, समाप्त हो गया, विनयः=नम्रता, माम=मुझ लव को, प्रयह्वति =नम्र बना रहा है, अस्मिन्=इस महापुरुष के, दृष्टे=साक्षात्कार होने पर, किमिति=न जाने क्यों ?, झटिति=अकस्मात्, सहसा, परवान्=पराधीन, अस्मि=हो गया हूँ, महार्घ=वहुमूल्य ।

प्रसंग—अश्वमेध के घोड़े को रोकने के वाद लव का राम की सेना के साथ युद्ध होता है उसी समय श्री रामचन्द्र जी वहाँ आते हैं उन्हे देखकर लव मन में कहता है कि—

व्याख्याऽर्थ—लव कहता है कि इन महापुरुप के दर्शन से विरोध भाव समाप्त हो गया है, अतीव आनन्द से उत्कृष्ट प्रेम भाव (मेरे शरीर में) फैल रहा है। मेरी यह उद्दण्डता पता नहीं कहाँ चली गई), (समाप्त हो गई) नम्रता मुझको नम्र बना रही है, मैं (लव) इन महापुरुप को देखते ही सहसा परा-धीन हो गया हूँ, अथवा तीर्थों के समान महापुरुपों का कोई अमूल्य उत्कर्ष होता है अर्थात् जिस प्रकार तीर्थों के दर्शन से मन को अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार इन महापुरुष के दर्शन से मेरा मन इन महापुरुप की ओर आर्कपित हो रहा है इसमें आश्चर्य ही क्या है क्योंकि महापुरुपों के दर्शन से मन का आनन्दित होना स्वाभाविक ही है।

विशेष—इस श्लोक में उपमा तथा अर्थान्तिरन्यास अलङ्कार है शिखरिणी छन्द तथा प्रसाद गुण है

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
नं खलु वहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतंगस्योदिते पुन्डरीकम्,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकांतः ॥ ६-१२

शब्दार्थ—आन्तरः=हृदय का भाव, कोऽपि=कोई, अलौकिक, हेतु=कारण, पदार्थान्=पदार्थों को, व्यतिषजति=परस्पर मिला देता है, प्रीतम्=

प्रेम, बहिः=वाह्य, बाहरी, उपाधीन्=कारणों को, न=नहीं, संश्रयन्ते= आश्रय लेता है, हि=क्योंकि, पतगंस्य=सूर्य के, उदिते=निकलने पर पुण्ड-रीकम्=कमल, विकसति=विकसित होता है, हिमरश्मौ=चन्द्रमा के, उद्गते =निकलने पर, चन्द्रकान्तः=चन्द्रकान्त नामक मणि, द्रवति=जलक्षरण करती है, पिघलने लगती है।

प्रसंग—श्री रामचन्द्र जी सहसा लव को देखकर आनन्द विभोर होते हुये मन में कहने लगते हैं कि—

व्याख्यार्थ—यह बालक तो सहसा न जाने क्यों मेरे दुःखों को समाप्त कर रहा है अर्थात्—मुझे आनन्द दे रहा है और न जाने किसी अलौकिक (असाधारण) कारण से मेरे हृदय को प्रेम से आर्द्र बना रहा है अथवा प्रेम तो किसी कारण से उत्पन्न होता है परन्तु यहाँ निष्कारण मेरे हृदय में प्रेम उमड़ रहा है यह एक विरुद्ध सी बात प्रतीत हो रही है। अथवा प्रेम किसी कारण के बिना ही उत्पन्न होता है क्योंकि—प्रेम बाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होता है कोई आन्तरिक कारण ही पदार्थों को परस्पर मिलाता है (यही कारण है कि)—सूर्य के निकलने पर ही कमल के पुष्प विकसित होते हैं और चन्द्रमा के उदय होने पर ही चन्द्रकान्त मणि जल का क्षरण करती है (पिघलने लगती है)।

विशेष—इस श्लोक में प्रेम की परिभाषा बताते हुये भवभूति ने कहा है कि—प्रेम बाह्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखता है वह प्रेय तो आन्तरिक विशेष भावों पर ही आधारित (आश्रित) होता है। यही कारण है कि—सूर्य के निकलने पर कमल विकसित होते है और चन्द्रमा के निकलने पर चन्द्रकान्त मणि पिघलने लगती हैं। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्र वेदः,
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः। ६–९

शब्दार्थ—लोकात्=तीनों लोकों की, त्रातुम्=रक्षा करने के लिये, परिणतः अवतार ग्रहण किया है, कायवान्=शरीर धारण किये हुये, अस्त्र-वेद इव=अस्त्रवेद के समान, ब्रह्मकोशस्य=ब्रह्म (वेद) कोष की, गुप्त्यै= रक्षा के लिये, तनुम्=शरीर, श्रितः=धारण किया है, क्षात्रः धर्मः=क्षत्रिय,

—

धर्म ने, वा=अथवा, सामर्थ्यातम्=शक्तियों के, समुदयः=समूह ने, गुणानाम् =दया दाक्षिण्य, एवं वीरता आदि गुणों के, संचयः=समूह ने, वा=अथवा, जगत्पुण्यनिर्माणराशिः=संसार के पुण्य की राशि (समूह) ने, आविर्भूय= उत्पन्न होकर, स्थित इव=खड़ा हुआ है।

प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्र जी वाल्मीकि आश्रम के समीप अपनी सेना के मध्य लव को देखकर अपने मन में कह रहे हैं कि—

व्याख्यार्थ—क्या धनुर्वेद ने ही तीनों लोकों की रक्षा के लिये अवतार ग्रहण किया है ? अथवा वेद कोप (ज्ञानराशि) की रक्षा के लिये क्षत्रिय धर्म ने ही शरीर ग्रहण कर लिया है ? अथवा शक्तियों के समूह ने, दया दाक्षिण्य, शौर्य, औदार्य आदि गुणों के समूह ने, अथवा संसार के पुण्य समूह ने ही (इस बालक लव के रूप में) प्रकट होकर खड़ा हो गया।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में लव का असाधारण पराक्रमातिशय ध्वनित होता है कि—बालक होते हुये असाधारण वीर के समान वीर है। इस श्लोक में प्रति वाक्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार की छटा दर्शनीय है। मन्दाक्रान्ता छन्द तथा प्रसाद गुण हैं।

अङ्गादङ्गात्सृत इव निजः स्नेहजो देहसारः,
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः।
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेणावसिक्तो,
गाढाऽऽश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव ॥ ६-२२

शब्दार्थ—अङ्गात्=अङ्गत=(मानों) अंगों से, सृतः=निकला हुआ, स्नेहज=स्नेह से उत्पन्न, निजः=अपना, देहसारः=शरीर का सार ही एक =एक, चेतनाधातुः=चेतना शक्ति, बहिः=वाहर, प्रादुर्भूय=निकलकर, स्थितः=स्थित (खड़ी) हो गई हैं. सान्द्रानन्दक्षुभितहृदय प्रस्रवेण=अत्यन्त आनन्द से मथित हृदय के स्नेह रूप जल से, अवसिक्त=क्लिन्न, सिक्त, सः=यह वालक, गाढाऽऽश्लेष=गाढ़ आलिङ्गन, मम=मेरे लिये, हिमच्योतम् =हिम (शीतल) सिंचित के समान, आशंसतीव=मानों सींच रहा है।

प्रसङ्ग—वाल्मीकि आश्रम के निकट कुश को देखकर और कुश को हृदय से लगाकर अपने मन में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि—

व्याख्यार्थ—मानों प्रत्येक अङ्ग से स्नेह से उत्पन्न मेरे शरीर का सार अथवा चेतना शक्ति ही (इस वालक के रूप में) बाहर निकलकर खड़ी हो गई हो। अत्यन्त आनन्द से व्याकुल हृदय के द्रव (जल से) से सिक्त हुआ यह बालक

गाढ़ आलिंगन में मानों मुझे हिम से सींच रहा है अर्थात् इस बालक के गाढ़ आलिंगन से मुझे अतिशय आनन्द प्राप्त हो रहा है। अर्थात् मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरी चेतना शक्ति ही वात्सल्य प्रेम की अधिकता से मेरे अंगों से बाहर निकलकर इस बालक के रूप में उपस्थित हो गई हो इस बालक का आलिंगन मुझे हिम के समान शीतल (आनन्ददायक) प्रतीत हो रहा है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार की छटा दर्शनीय है। इसमें मन्द्राकान्ता छन्द है। इससे श्री रामचन्द्र का कुश के प्रति वात्सल्य की अतिशयिता व्यंजित होती है।

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥ ६–३८

शब्दार्थ—प्रवासे=विरह के समय, चिरं=बहुत देर तक, ध्यात्वा-ध्यात्वा=बार बार ध्यान करके, नर्माय=कल्पनाओं से मूर्ति का निर्माण करके, पुरत= आगे, निहितः इव=स्थापित किया हुआ सा, प्रियजन=प्रेमी व्यक्ति, आश्वासम्=शान्ति को, न करोति=नहीं करता है, कलत्रे=स्त्री के उपरते=मर जाने पर, जगत्=संसार जीर्णारण्यम्=जीर्ण शीर्ण वन,भवति =हो जाता है, तदनु - उसके बाद, कुकूलानाम्=भूसी की, आग की राशौ =राशि में (ढेर में) पच्यत इव=मानों पकता रहता है।

प्रसंग—श्री रामचन्द्र जी कुश और लव को देखकर उनमें सीता की आकृति का अनुभव करते हुये कहते हैं कि—मैं इस समय आभूषणों से रहित होने पर भी तुम्हारे (सीता के) मुख मण्डल को प्रत्यक्ष सा देख रहा हूँ ऐसा मन में कहते हुये राम का हृदय करुणा से भर जाता है और मन ही मन कहने लगते हैं कि—

व्याख्यार्थ—प्रवास में (विरह दशा में) बहुत समय तक बार-बार ध्यान कर के (कल्पनाओं से मूर्ति) बनाकर सामने स्थापित किया हुआ प्रिय व्यक्ति शान्ति न पाता हो यह बात नहीं अपितु अवश्य सान्त्वना पाता है। परन्तु स्त्री के मर जाने पर तो समस्त संसार जीर्ण-शीर्ण वन के समान हो जाता है, और फिर वह विरही व्यक्ति का हृदय मानों भूसी की अग्नि राशि में पकता रहता है। अर्थात् जिस प्राकर भूसी की आग में पड़ा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे झुलसता रहता है उसी प्रकार प्रिय व्यक्ति के मर जाने पर विरही व्यक्ति धीरे-धीरे

विरह की आग, में झुलसता रहता है । उसी प्रकार मैं राम सीता के निधन हो जाने पर झुलस-झुलस कर विरहजन्य असह्य कष्टों को भोग रहा हूँ ।

विशेष—प्रिय पत्नी के बिना संसार का जीवन व्यर्थ एवम् भार होता है इससे श्री रामचन्द्र का विरह जन्य दुःखातिशय व्यंजित हो रहा है । इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है और शिखरिणी छन्द है ।

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा,
माङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च ।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः,
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥ ७–२१

शब्दार्थ—पाप्मभ्य = पापों से, पुनाति = शुद्ध करती है, श्रेयांसि = पुण्य कर्मों को, वर्द्धयति - बढ़ाती है, विन्यस्तरूपाम् - अच्छी तरह प्रदर्शित की गई, शब्दब्रह्मविदः शब्दब्रह्म के ज्ञाता, बाल्मीकि, प्राज्ञस्य = विद्वान की, परिणताम् = बदली गई, दूसरे रूप में प्रस्तुत की गई, विभावयन्तु = विवेचन करें ।

प्रसंग—सीता, कुश, लव के सम्मिलन के बाद बाल्मीकि ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि मैं आपका और कौनसा प्रिय कार्य करूं यह सुनकर श्री राम ने कहा कि क्या इससे भी कुछ अधिक कार्य हो सकता है तथापि यह भरत-वाक्य और हो ।

व्याख्यार्थ—संसार की माता और गंगा जी के समान यह कल्याण-कारिणी सुन्दर कथा (संसार को) पापो से शुद्ध करती है और पुण्य कर्मों की वृद्धि करती है ? उसी शब्द ब्रह्म के ज्ञाता बाल्मीकि की अभिनय आदि के द्वारा भली-भांति प्रदर्शित की गई तथा कवि के द्वारा दूसरे रूप की प्रस्तुत की गई इस (रामायण की) वाणी का (कथा का) विद्वज्जन विवेचन करे (बाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण की कथा को ही कवि भवभूति ने) इस नाटक के द्वारा दूसरे रूप में चित्रित किया है विद्वान् सहृदय इस रामायण की कथा रूपी अमृत का आस्वादन करें ।

विशेष—इस श्लोक में उपमा अलंकार है, शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा माधुर्य गुण है । बाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण की कथा का परिवर्तित नवीन रूप इस नाटक की कथा का सहृदय विद्वान् लोग आस्वादन प्राप्त करें ।